ईकाई-1 नैदानिक मनोविज्ञान: प्रकृति एवं विकास, नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियाँ, नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य संबंधित क्षेत्र, असामान्य एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर

(Clinical Psychology: Nature and development, Activities of Clinical Psychologists, Clinical Psychology and other related fields, Difference between Abnormal and Clinical psychology)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति
1.4 नैदानिक मनोविज्ञान का विकास
1.5 नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियाँ
- 1.5.1 मानसिक चिकित्सालयों में
- 1.5.2 विद्यालयों में
- 1.5.3 बाल मार्गदर्शन उपचार गृह में
- 1.5.4 व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में
- 1.5.5 बन्दीगृहों एवं सुधारगृहों में
- 1.5.6 संगठनों एवं उद्योगों में
- 1.5.7 मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्रों में

1.6. नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित क्षेत्र
- 1.6.1. परामर्श मनोविज्ञान के साथ संबंध
- 1.6.2. मनोरोग विज्ञान के साथ संबंध
- 1.6.3. मनोविश्लेषण के साथ संबंध
- 1.6.4. असामान्य मनोविज्ञान के साथ संबंध
- 1.6.5. मनोरोगी सामाजिक कार्य के साथ संबंध
- 1.6.6. निर्देशन मनोविज्ञान के साथ संबंध

1.7. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर
1.8. सारांश
1.9. शब्दावली
1.10. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
1.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारिक जीवन से सम्बन्धित कठिनाईयों के समाधान का प्रयास करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा तकनीकियों का प्रयोग करके व्यक्ति के सामने आने वाली समस्याओं का समाधान किया जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध अधिकतर उन समस्याओं से होता है जिनसे एक व्यक्ति जूझता रहता है। नैदानिक मनोविज्ञान में व्यक्ति विशेष के व्यवहार को समझने का प्रयास किया जाता है। इसे एक सहायतापरक पेशे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जो साँवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं से पीड़ित व्यक्तियों को उनकी इन समस्याओं से मुक्ति दिलाने की कोशिश करता है।

प्रस्तुत इकाई में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति एवं विकास के बारे में आप जान सकेगें। साथ ही नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न गतिविधियाँ तथा नैदानिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेगें।

1.2 उद्देश्य-

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

1. नैदानिक मनोविज्ञान परिचय एवं विकास को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियों को जान सकें।
3. मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का नैदानिक मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध को जान सकें।
4. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर को समझ सकें।

1.3 नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रमुख प्रयुक्त शाखा है। मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें मानसिक रोगों के निदान तथा उपचार पर बल डाला जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान पद का प्रतिपादन सबसे पहले लाइटनर विटमर ने 1896 में किया। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मानसिक रोगों के वर्णन वर्गीकरण निदान तथा पूर्वानुमान से होता है। इसमें मानसिक रोगो का उपचार मनोवैज्ञानिक विधियों से किया जाता है।

परिभाषायें

(i) सिक्कारेल्ली एवं मेयर (2006) के अनुसार "नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक साधारण से गंभीर रूप से मनोवैज्ञानिक विकृतियों से ग्रस्त व्यक्तियों की पहचान एवं उपचार करते है।"

(ii) कोरचिन (1986) के अनुसार, नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों को समझने एवं उन्हें मदद करने से होता है। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मानव व्यक्तित्व की संरचना एवं कार्य के बारे में ज्ञान उत्पन्न करने तथा उनका उपयोग करने से भी होता है।

(iii)रॉटर जुलियन बी. (1964) ''विस्तृत आधार पर, नैदानिक मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग का वह क्षेत्र है, जिसका संबंध मुख्यतः व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक समायोजन से रहता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से ये स्पष्ट हो जाता है कि नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध एक व्यक्ति की साधारण तथा व्यक्तिगत समस्याओं तथा कठिनाइयों से है अर्थात् नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों की व्यावहारिक तथा साधारण समस्यायें ही है।

नैदानिक मनोविज्ञान में सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है। इस समस्याओं में प्रमुख हैः- मानसिक रोग, किशोर अपराध, मानसिक दुर्बलता, वैवाहिक एवं पारिवारिक संघर्ष, औषध व्यसन, आपराधिक व्यवहार आदि।

नैदानिक मनोविज्ञान में संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं को समझने के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन पर भी बल डाला जाता है। सिगमण्ड फ्रायड ने नैदानिक मनोविज्ञान के इस पक्ष पर सबसे अधिक बल डाला है।

नैदानिक मनोविज्ञान में सभी संस्कृति के उच्च, मध्य तथा निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तियों के सांवेगिक, जैविक, सामाजिक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर विचार विमर्श किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान का स्वरूप प्रयुक्त है। इसमें मानसिक रोगों तथा अन्य सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं का निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है।

1.4 नैदानिक मनोविज्ञान का विकास -

पाश्चात्य देशों में नैदानिक मनोविज्ञान का विकास-

नैदानिक मनोविज्ञान अपने विकास की दृष्टि से लगभग उतना ही पुराना है जितना मानव की दार्शनिक विचारधारा के विकास का इतिहास है। व्यवहारिक रूप से तथा वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से इसका आरम्भ द्वितीय महायुद्ध के पश्चात ही हुआ है। जिस प्रकार सामान्य मनोविज्ञान को एक वैज्ञानिक मनोविज्ञान के रूप में भौतिक विज्ञानों तथा जीवन विज्ञानों की नई खोजों ने विशेष योगदान दिया है उसी प्रकार नैदानिक मनोविज्ञान के वैज्ञानिक विकास में मनोभौतिक प्रयोगों तथा मनोरोग संबंधी खोजों का योगदान रहा है। इसके अलावा नैदानिक मनोविज्ञान के विकास में प्रशासनिक, औद्योगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक क्षेत्रों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं के मूल्यांकन और उनके समाधान सम्बन्धी कार्यक्रमों ने भी विशिष्ट भूमिका अदा की है।

नैदानिक मनोविज्ञान का आरम्भ 1896 में यू0 एस0 ए0 के पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में विटमर के द्वारा किया गया। इस अवधि में नैदानिक मनोविज्ञान का मुख्य लक्ष्य स्कूल बालकों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनका समाधान करना था। 1906 में मौटर्न प्रिन्स ने ष्जनरल ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजीष् का प्रकाशन शुरू किया। 1907 में नैदानिक मनोविज्ञान का पहला जनरल प्रकाशित किया गया जिसका नाम ष्दी साइकोलॉजिकल क्लिनिकष् था। इस जनरल में नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए शोधों एवं पाए गए तथ्यों का प्रकाशन होता था।

1909 में जे0वी0 माइनर ने मिनसोटा विश्वविद्यालय में मानसिक विकास का एक उपचारगृह खोला। 1909 में हीली द्वारा शिकागों में ''जुभेनाइल साइकोपैथिक इंस्टीच्यूट'' की स्थापना की गयी। 1919 में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ के अन्तर्गत नैदानिक मनोविज्ञान का एक अलग विभाग जिसे डिवीजन संख्या 12 कहा गया, की स्थापना की गयी। 1919 में APA के क्लीनिकल साइकोलॉजी सम्भाग की स्थापना हुई। इसमें APA नैदानिक विभाग ने नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण के लिये एक कमेटी का संगठन किया|

1935 में नैदानिक मनोविज्ञान की एक नइ परिभाषा भी दी जो इस प्रकार थी, *''नैदानिक मनोविज्ञान वह कला एवं तकनीकी है जो मानव के समायोजन समस्याओं का अध्ययन करता है।''*

जेम्स मैककीन कैटेल द्वारा 1921 में दी साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन की स्थापना की गई, इसका मुख्य कार्य मनोविज्ञान परीक्षणों को प्रकाशित करना तथा उनकी उपयोगिकताओं को बताना था। द्वितीय विश्वयुद्ध में नैदानिक मनोविज्ञान को एक पेशे के रूप में विकसित होने में काफी मदद मिली। इस विश्वयुद्ध में नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने अमेरिकन सरकार को सैनिक सेवा में सांवेगिक रूप से अस्थिर लोगों का चयन करने में अपने विशेष मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से काफी मदद की।

प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच की अवधि में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रगति होती गई। इस समय अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विकास हुआ जैसे- बुद्धि परीक्षण, अभिवृत्ति परीक्षण आदि। 1946 में नैदानिक मनोविज्ञान की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी और यह एक व्यवसाय के रूप में स्थापित हो गया था। अब नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की मांग भी लगातार बढ़ रही थी। 1960 में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रथम शोध पत्रिका ''जनरल ऑफ अबनॉर्मल एण्ड सोशल साइकोलॉजी'' प्रकाशित हुई। इस समय फ्रांस में सम्मोहन विधि के द्वारा मानसिक रोगों का उपचार किया जाता था। फ्राइड ने भी इसी समय मनोविश्लेषण सिद्वान्त का प्रतिपादन किया था जो व्यक्तित्व विकास में सहायक हो रहा था। 1963 में अधिकतर शोध उपाधि नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में ही मिली। इसके बाद नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों का महत्व औद्योगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में भी होने लगा। इसके साथ ही नैदानिक मनोविज्ञान की भूमिकायें बाल निर्देशन, मानसिक चिकित्सालयों, विद्यालयों, बाल सुधार गृहों में भी बढ़ने लगी।

1966 में ब्रिटिश साइकोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना हुई जिसका मुख्य उद्देश्य नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों को बढ़ावा देना था। 1960 से 1970 के दशक में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की संख्या में वृद्धि हुई।

1968 में इलिनोइस विश्वविद्यालय द्वारा ''डॉक्टर ऑफ साइकोलॉजी'' की उपाधि दी जाने लगी। यह उपाधि उन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को दी जाती है, जिनमें नैदानिक कौशलता अधिक थी अर्थात् जो नैदानिक कार्यों में विशेष रूचि रखते थे। इस प्रकार से नैदानिक मनोविज्ञान निरन्तर विकास एवं प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का विकास-

प्राचीन काल में भी नैदानिक मनोविज्ञान का अस्तित्व था। उस समय कुछ ऐसे तथ्य थे जो आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान में है जैसे- मानसिक विकृति के प्रकार एवं उपचार आदि। भारतीय संस्कृति में चार तरह के वेद है-

(i ऋग्वेद (ii यजुर्वेद (iii सामवेद (iv अथर्ववेद

इसमें अथर्थवेद में मानसिक रोगों एवं उनके उपचार को बताया गया है। इस वेद के अनुसार मानव व्यक्तित्व का सन्तुलन शरीर में उत्पन्न होने वाले तीन कायरसो के द्वारा होता है- (i वात (ii कफ (iii पित्त। यदि शरीर में किसी भी कारण से इन तीनों में से कोई भी ज्यादा या कम हो जाता है तो शारीरिक संतुलन बिगड़ जाता है। यदि ये स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती है तो इसके कारण अनेक शारीरिक परेशानियॉ उत्पन्न हो सकती है और आगे चलकर मानसिक विकृतियों का रूप ले सकती है। प्राचीन काल में एक व्यक्ति को इन विकृतियों से मुक्त करने के लिये मुख्य विधियॉ - तंत्र विद्या, हवन, भूत विद्या, जप, तप, व्रत, पूजा, ध्यान, ज्ञान आदि प्रमुख थी। जिन रोगियों को इन विधियों से लाभ नही होता था उन्हें किसी धार्मिक स्थान पर ले जाया जाता था।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही मानव व्यक्तित्व के उत्थान एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिये योगदर्शन तथा योग अभ्यास का प्रचलन रहा है। 1915 में भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का शुभारम्भ हुआ। 1919 में कलकत्ता के लम्बुनी पार्क मानसिक चिकित्सालय में साइको-एनालैटिक सोसाइटी की स्थापना हुई। 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग में मनोविज्ञान की एक शाखा स्थापित हुई। इसमें मनोविज्ञान को विज्ञान संकाय में रखा गया। यहॉ पर मनावैज्ञानिक परीक्षण बनाए जाते थे तथा छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन दिया जाता था। 1924 में मैसूर विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पढ़ाई शुरू हुई तथा भारतीय मनोविज्ञान संघ की स्थापना हुई। 1943 में ''इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइकोलॉजी एण्ड मेन्टल हाइजिन'' की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत नैदानिक सेवायें, सर्वे, जनशिक्षा तथा शोध आदि कार्य किये जाते है। भारत में अनेक ऐसे संस्थानों की स्थापना हुई जिनके अन्तर्गत मनोरोगी सामाजिक कार्यकर्ता तथा नैदानिक मनोविज्ञान में डिप्लोमा दिया जाता है। कुछ संस्थानों में परामर्श तथा निर्देशन में डिप्लोमा प्रदान किये जाते है।

1969 में बैगलोर में भारतीय नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने अखिल भारतीय संघ खोला। इसके अन्तर्गत मनोचिकित्सा, मनोनिदान, परामर्श, निर्देशन आदि क्षेत्रों में शोध कार्य तथा पठन-पाठन से सम्बन्धित कार्यो की नवीन जानकारियॉ तथा सुझाव दिये जाते है।

पाश्चात्य देशों में तो नैदानिक मनोज्ञिान में तो बहुत तरक्की हुई है परन्तु भारतवर्ष में अभी इसका पूर्ण विकास नही हो पाया है और नैदानिक मनोविज्ञान का एक व्यवसाय के रूप में अधूरा विकास हुआ है क्योंकि इस देश में मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन अभी पूरा नही हो सका है।

1.5 नैदानिक मनोविज्ञानिकों की विभिन्न गतिविधियाँ -

1.5.1. मानसिक चिकित्सालयों में -

मानसिक चिकित्सालयों में नैदानिक मनोविज्ञानिकों द्वारा अनेक गतिविधियॉ होती है। वे यहॉ पर मनोवैज्ञानिक कार्यक्रमों को चलाते है जिसमें रोगियों के लिये बहुत सी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रविधियों का प्रयोग करते है। मानसिक चिकित्सा में कुछ नए प्रशिक्षणार्थी आते है जो इस रोग से संबंधित प्रशिक्षण प्राप्त करते है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक इन नए प्रशिक्षणार्थियों को भी प्रशिक्षण देते है।

मानसिक चिकित्सालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का सबसे प्रमुख कार्य मनश्चिकित्सा या मनोपचार प्रदान करना है। नैदानिक मनोविज्ञान मनश्चिकित्सा की जिन प्रविधियों का प्रयोग मानसिक चिकित्सालय में अधिक करते है, उनमें मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, रोगी-केन्द्रित चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा आदि मुख्य है। वे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर रोगियों को कुछ सलाह भी देते है जो उनके भविष्य के लिए लाभप्रद होती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस चिकित्सालयों में कई तरह के शोध कार्य किये जाते है जिनमें विभिन्न तरह के मनोनैदानिक परीक्षणों का निर्माण, व्यक्तित्व के सिद्धान्त का विकास, चिकित्सीय प्रविधियों का मूल्यांकन आदि महत्वपूर्ण है। मानसिक चिकित्सालयों में मानसिक रोगों के निदान तथा उपचार के लिए विशेष प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसमें नैदानिक मनोविज्ञान में एम0ए0 करने वाले छात्रों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों के इन मानसिक अस्पतालों एवं उपचार-गृह में कई तरह के प्रशासनिक पद होते है। मुख्य मनोवैज्ञानिक का पद, विश्वविद्यालिय विभाग के अध्यक्ष के पद के समान होता है। इसमें उन्हें प्रशासनिक कार्य करना पड़ता है। जिसके अन्तर्गत रिकार्ड का ठीक ढंग से रख-रखाव, आन्तरिक रिपोर्ट तैयार किया जाना, विभिन्न शोध प्रोजेक्ट का समय के अनुरूप पूरा किया जाना और मानसिक अस्पताल में कर्मचारियों द्वारा अनुशासन का पालन करना आदि सम्मिलित होते है।

1.5.2. विद्यालयों में-

विद्यालयों में कई ऐसे बालक होते है जिनकी कुछ संवेगात्मक समस्याये होती है, जिनसे वे स्कूल के वातावरण में ठीक से समायोजन नहीं कर पाते है और विद्यालय में शिक्षक व प्रशासन के लिए नई समस्यायें उत्पन्न करते है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल में जाकर ऐसे बच्चों से मिलकर पहले उनकी समस्याओं की पहचान करते है, उसके बाद उसका उपयुक्त निदान करते है तथा फिर उसका उपचार करते है। फेयर्स (1984) के अनुसार नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे बच्चों को बुद्धि तथा अभिक्षमता को मापते है और उसके अनुरूप उन्हें शिक्षा देने की सिफारिश शिक्षकों को देते है। स्कूल में नैदानिक मनोवैज्ञानिक सिर्फ समस्यात्मक बालकों की ओर ही अपना ध्यान नहीं देते हैं बल्कि अन्य सामान्य बच्चों की अभिक्षमताओं एवं अभिरूचियों का भी अध्ययन करते है। वे बच्चों की अभिक्षमताओं एवं अभिरूचियों को मापकर वे उन्हें उन विषयों या पाठों को पढ़ने की सलाह देते है जिनमें उनकी रूचि होती है। कभी-कभी नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल में अपना विशेष कैम्प भी लगाते है। इस तरह के कैम्प में नैदानिक मनोवैज्ञानिक बालकों की समस्या को सुनते है तथा कुछ परामर्श सत्र रखते है जिससे छात्र-छात्रायें अपनी समस्यायें बताते है और उसका निदान मनोवैज्ञानिकों द्वारा करवाते है। इससे उनमें आत्मविश्वास की भावना बढ़ती है।

1.5.3. बाल मार्गदर्शन उपचारगृह में -

बाल मार्गदर्शन उपचार-गृह एक ऐसा उपचार-गृह होता है जहॉ उन बच्चों को भेजा जाता है जिनमें शैक्षिक, मनौदेहिकी तथा अन्य दूसरी तरह की समायोजन संबंधी-समस्याऐं काफी बढ़ जाती है, ऐसे उपचार-गृह में स्कूल दुर्भीति, मल-मूत्र त्याग से संबंधित समस्या जैसे असंयतमूत्रता आदि से ग्रस्त बालक उपचार के लिए अधिक पहुंचते है। उपचार गृह में लाये गये बच्चों की समस्याओं का मूल्यांकन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। इस कार्य को करने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिक विभिन्न तरह के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे बुद्धिपरीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिक्षता परीक्षण तथा अभिरूचि परीक्षण का प्रयोग करते है। इन परीक्षणों के द्वारा वे बच्चों की बुद्धिए व्यक्तित्व, अभिरूचि तथा अभिक्षमता के बारे में पता लगाकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचते है। इस तरह मिली सूचनाओं द्वारा अंत में वे बच्चों की समस्याओं का वर्गीकरण करते है जिनसे उन्हें निदान करने तथा फिर उनका उचित उपचार एवं मार्गदर्शन करने में अधिक आसानी होती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक बाल मार्गदर्शन उपचार-गृह में लाये बच्चों के उपचार करने के बाद कुछ ऐसे सुझाव उनके माता पिता को देते है जिनसे बच्चों को घर पर भी सही मार्गदर्शन मिल जाता है।

1.5.4. व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में-

व्यावसायिक मार्गदर्शन केन्द्र में नैदानिक मनोवैज्ञानिक का एक कार्य रोजगार परामर्शदाता के रूप में भी होता है। इन केन्द्रों में व्यक्तियों को उचित व्यवसाय का चयन करने के बारे में सलाह दी जाती है। पहले नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे लोगों की अभिक्षमता, अभिरूचि एवं समायोजनशीलता का मापन करते है। उसके बाद उनकी उचित व्यवसायिक जीवन-वृत्ति का चयन करने में मदद करते है। इसके दो फायदे बतलाये गए है- 1. पहला तो यह कि व्यक्ति इसके बाद जिस व्यवसाय में जाता है, उससे कार्य-संतुष्टि अधिक होती है तथा उसका कार्य-निष्पादन अधिक श्रेष्ठ होता है। 2. दूसरा फायदा यह बतलाया गया है कि ऐसे लोग आगे चलकर एक सफल व्यवसायिक होते है और समाज के विकास में वे अच्छा योगदान दे पाते है।

आधुनिक समय में महाविद्यालयों में इस तरह के परामर्श केन्द्र खोले जा रहे है। इनके माध्यम से छात्र/छात्रायें अपने भावी जीवन के संबंध में सही व्यवसाय या कार्य क्षेत्र का चयन कर पाते है। महाविद्यालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियॉ एक परामर्शदाता के रूप में होती है। वह छात्रों की रूचियों, अभिक्षमता तथा बुद्धि स्तर का परीक्षण करता है। इसके आधार पर वह उनका सही मार्गदर्शन करता है तथा सही व्यवसाय चुनने में मदद करता है।

1.5.5. बन्दीगृहों एवं सुधारगृहों में -

नैदानिक मनोवैज्ञानिक जेल में जाकर अपराधी व्यवहार के कारणों को ढूँढते है और उन्हें दूर करने के उपाय करते है। वे कैदियों को सामूहिक रूप से देखते है और इनके आधार पर उनके लिये शिक्षा संबंधी तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित करते है। बन्दीगृह में नैदानिक मनोवैज्ञानिक की मुख्य गतिविधि कैदियों के जीवन में सुधार करना और नया जीवन देना है। अपराधी व्यवहार अधिकतर प्रतिकूल वातावरण के मिलने से पनपता है

तथा अनुकूल वातावरण मिलने से घटता है या नियमित हो जाता है। इसलिये इन अपराधियों को अनुकूल एवं मानवीय वातावरण प्रदान करने की कोशिश की जाती है।

सुधारघरों में भी नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इन घरों में अपराधियों को विशेषकर किशोर अपराधियों के उस उद्देश्य से रखा जाता है कि उनका उचित मार्गदर्शन करके उन्हें फिर से एक समायोजित जिन्दगी जीने के लायक बनाया जा सके। यहाँ पर भी नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी विशेष सेवा के माध्यम से महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। पुनर्वास के ख्याल से नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे अपराधियों का एक केस इतिहास तैयार करते है और उसके आधार पर वे उनकी प्रमुख समस्याओं को पहचानतें है और उपचार करते है। वे अपराधियों को उचित परामर्श देते है ताकि वे भविष्य में सही समायोजन कर सके और सामान्य जीवन बिता सकें।

1.5.6. संगठनों एवं उद्योगों में -

नैदानिक मनोविज्ञानिकों की भूमिका उद्योग तथा अन्य संगठनों में भी आजकल बढ़ती जा रही है। किसी भी उद्योग तथा संगठन की सबसे प्रमुख शक्ति मानव शक्ति होती है। उद्योगों एवं संगठनों में जो कर्मचारी कार्य करते है उनकी अनेक समस्याएँ होती है जिनके कारण कर्मचारियों में समायोजन संबंधी तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। धीरे-धीरे इन समस्याओं का कुप्रभाव कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक उद्योगों में परामर्श सेवाएँ करते है। अपने उद्योगों एवं संगठनों के कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य की जॉच तथा उन्नत बनाने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से विशेष परामर्श माँगा जाता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक एक सामान्य परामर्श देते हैं जिनसे उद्योगपतियों तथा व्यवस्थापकों को इन कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए विशेष सेवा प्रदान करने में मदद मिलती है। कभी-कभी इस सामान्य परामर्श के अलावा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से व्यक्ति विशेष के लिए भी उनकी परामर्श सेवाएँ ली जाती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक उद्योगों में जाकर शिविर भी लगाते है जहाँ कर्मचारियों का एक-एक करके व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग उनका मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण किया जाता है और उन्हें परामर्श दिया जाता है।

उद्योग में नैदानिक मनोवैज्ञानिक विभिन्न नैदानिक परीक्षणों का उपयोग करके कर्मचारियों की अभिरूचि, बुद्धि एवं अभिक्षमता आदि का मूल्यांकन करते है तथा उसके अनुसार उन्हें कार्यभार देने का उचित सिफारिश व्यवस्थापकों एवं कार्यपालकों को करते है। इससे उनमें समायोजनशीलता की क्षमता बढ़ती है और अन्त में उत्पादन पर काफी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। संगठनों तथा उद्योग में नैदानिक मनोवैज्ञानिको को शोध कार्य भी करना पड़ता है जिससे उन्हें कर्मचारियों के भिन्न-भिन्न समस्याओं से संबंधित अनेक तरह के आँकडे मिल जाते है जिनके आधार पर उन्हें शोध करने में आगे काफी मदद मिलती है। अपने शोधकार्य के माध्यम से वे नये-नये नियमों एवं तथ्यों की खोज कर सकते हैं। बाद में यह तथ्य कर्मचारियों के समायोजन तथा मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान करने में एक आधार बनते है।

1.5.7. मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्रों में-

आधुनिक समय में मादक द्रव्यों का सेवन लगातार बढता जा रहा है। इनका सेवन समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों में बढ रहा है। खासकर युवावर्ग इनकी चपेट में आ रहा है। इस नशे की लत से छुटकारा पाने के लिये मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्र खोले गये है जिनमें उन व्यक्तियों को लाया जाता है जिनमें नशे की लत बहुत गंभीर समस्या हो जाती है। इन केन्द्रों के नैदानिक मनोवैज्ञानिक वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा तथा पारिवारिक परामर्शदाता के रूप में गतिविधियॉ करते है।

1.6 नैदानिक मनोविज्ञान तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्र -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है। मनोविज्ञान की इस शाखा का अन्य क्षेत्रों के साथ भी गहरा सम्बन्ध है। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध अन्य क्षेत्रों के साथ भी हैं जैसे-मनोरोगविज्ञान, मनोविश्लेषण, मनोरोगी सामाजिक कार्य, परामर्श नैदानिक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि। नैदानिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र से संबंधित कुछ अन्य क्षेत्र भी है जिनकी विषय सामग्री कुछ हद तक इससे मिलती जुलती है इनमें मुख्य है- निर्देशन।

1.6.1 परामर्श मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान तथा परामर्श मनोविज्ञान दोनों ही एक दूसरे से संबंधित है। नैदानिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत भी मानसिक रोगों का निदान एवं उपचार किया जाता है। परामर्श मनोविज्ञान वह क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक उन व्यक्तियों को सलाह या राय देते है जो प्रतिदिन की समायोजन की समस्याओं से जूझते है। इस सलाह को ही परामर्श कहा जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत मानसिक समस्याओं का निदान करके उनका उपचार विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। परामर्श मनोविज्ञान में उन समस्याओं का समाधान किया जाता है जिनका स्वरूप कम गम्भीर तथा साधारण होता है जैसे- नींद न आना, मन उचाट होना, नाखून काटना आदि।

1.6.2 मनोरोगविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जबकि मनोरोगविज्ञान मनोविज्ञान की शाखा न होकर चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा है परन्तु दोनों का एक ही अध्ययन केन्द्र है। दोनों के अर्न्तगत असामान्य व्यवहार के लक्षणों, कारणों आदि को समझकर उनका उपचार किया जाता है।

मनोरोगविज्ञान में चिकित्सक द्वारा मानसिक रोग का निदान एवं उपचार होता है। जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इन कार्यो के अलावा अनेक तरह के मनोनैदानिक परीक्षणों का निर्माण भी होता है। इसके अर्न्तगत बुद्धि परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण आदि आते है जिनका उपयोग मानसिक रोगों के उपचार में होता है।

मनोरोग विज्ञान चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा है। इसे एम0 बी0 बी0 एस0 करने के बाद किया जाता है। इसे पूरा करने के बाद चिकित्सक को एम0 डी0 की डिग्री दी जाती है। इसमें चिकित्सक गम्भीर मानसिक रोगों का उपचार औषधियों के द्वारा करते है। इसके अलावा ये आघात चिकित्सा, मनोशल्य चिकित्सा का भी प्रयोग करते है। मनोरोग-विज्ञान में गंभीर मानसिक रोग जैसे मनोविदालिता, स्थिर-व्यामोह, द्विध्रुवीय विकृति जैसे रोगों का उपचार अधिक सफलतापूर्वक किया जाता है । नैदानिक मनोविज्ञान में साधारण मानसिक रोग जैसे सामान्यीकृत चिंता विकृति, दुर्भीति, मनोग्रस्ति-बाध्यता स्नायुविकृति आदि का उपचार अधिक किया जाता है। मनोरोगविज्ञान का संबंध केवल मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार से होता है परन्तु नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध इन मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार के अलावा समायोजन के विभिन्न तरह की समस्याओं का अध्ययन कर उनका समाधान करने से होता है।

1.6.3 मनोविश्लेषण के साथ संबंध -

मनोविश्लेषण पद का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया। इस पद के निम्नलिखित अर्थ है-1. एक संप्रदाय 2. एक सिद्धान्त 3. मनोचिकित्सा की एक विधि

मनोविश्लेषण नैदानिक मनोविज्ञान के काफी नजदीक है। मनोविश्लेषण एक ऐसी मनोचिकित्सा की विधि है जिसमें रोगी के अचेतन में छिपी तनावयुक्त बातों की पहचान विशेष विधियों से करके उसके संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक विकृतियों का निदान एवं उपचार करने की कोशिश की जाती है। मनोविश्लेषक या जिसे विश्लेषक भी कहा जाता है, एक ऐसा मनश्चिकित्सक होता है जो मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित विधियों एवं सिद्धान्तों का उपयोग करता है। मनोविश्लेषक को मनोरोगविज्ञान या मनोविज्ञान में उपाधि प्राप्त हो सकती है।

1.6.4 असामान्य मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान का असामान्य मनोविज्ञान के साथ गहरा संबंध है। असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहारों को समझने, उनके लक्षण, कारणों एवं उपचार संबंधी नियम बनाये जाते है। नैदानिक मनोविज्ञान में ऐसे नियमों या सिद्धांतों की व्यावहारिक उपयोगिता पर बल डाला जाता है और मानसिक रोगों का निदान तथा उपचार किया जाता है।

1.6.5 मनोरोगी सामाजिक कार्य के साथ संबंध -

इसके अर्न्तगत सामाजिक कार्यकर्ता आते है। ये मानसिक रोगों के उपचार एवं निदान का प्रशिक्षण भी लेते है। इनक कार्यकर्ताओं की रूचि मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों की मदद करने में होती है। समाज में इन समस्याओ से जो व्यक्ति पीड़ित होते है ये कार्यकर्ता उनके घर जाकर सूचनाऐं एकत्र करते है। इन लोगों के परिवार वालों को वे उचित मार्गदर्शन देते है तथा रोगी को मानसिक चिकित्सालय ले जाने के लिये प्रोत्साहित करते है। ये कार्यकर्ता मानसिक रोगों के उपचार में रोगी, उसके परिवार तथा मानसिक चिकित्सालय के बीच एक कड़ी को कार्य करते है। ये रोगी की सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक समस्याओं की सूचनायें एकत्र करके चिकित्सकों को बताते है ताकि उस रोग का निदान व उपचार सम्भव हो सके।

1.6.6 निर्देशन मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान का निर्देशन मनोविज्ञान के साथ भी संबंध है। दोनों में केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है। निर्देशन वह क्रिया है जिसमें किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह स्वयं अपने निर्णय ले सके। इसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, क्षमता, योग्यता एवं मानसिक स्तर को समझ पाता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयों के कारण कई संवेगात्मक या भावात्मक समस्यायें उत्पन्न होती है। ये समस्यायें व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है और उसमें मानसिक अशान्ति पैदा करती है। निर्देशन द्वारा इन समस्याओं का पता लगाया जाता है जो संवेगात्मक अस्थिरता पैदा करती है और नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत इन संवेगात्मक तथा मानसिक समस्याओं का निदान तथा उपचार किया जाता है।

1.7. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर

असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान दोनों ही मनोविज्ञान की शाखाएँ है जिनका असामान्य मनोविज्ञान में असमायोजित या विकृति व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इन व्यवहारों का निदान एवं उपचार किया जाता है। इन दोनों विज्ञानों में निम्नलिखित अन्तर है -

1. असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहारों, उनके कारणों, लक्षणों एवं उपचारों का अध्ययन किया जाता है।नैदानिक मनोविज्ञान में एक रोगी के असामान्यता के कारणों एवं लक्षणों को समझकर उसका उपचार किया जाता है, साथ ही एक सामान्य व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन भी किया जाता है।

2.असामान्य मनोविज्ञान का सामान्य दृष्टिकोण होता है अर्थात् किसी रोग के कारणों, लक्षणों एवं उपचार का सामान्य ढंग से वर्णन करता है। नैदानिक मनोविज्ञान का वैयक्तिक दृष्टिकोण होता है अर्थात् व्यक्ति विशेष के रोग को उसकी पृष्ठभूमि व लक्षण के आधार पर समझकर उसे उपयुक्त मनोचिकित्सा दी जाती है।

3.असामान्य मनोविज्ञान केवल मनोविज्ञान की एक रूप में जाना जाता है। इसका पेशे या व्यवसाय के रूप में विकास नही हुआ है।नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की शाखा होने के साथ-साथ पेशे या व्यवसाय के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न उपचार किये जाते है।

4.असामान्य मनोविज्ञान विभिन्न मानसिक विकारों की सैद्धान्तिक रूप से व्याख्या करता है।नैदानिक मनोविज्ञान विभिन्न मानसिक विकारों की व्यावहारिक रूप से व्याख्या करने के साथ-साथ उनका व्यावहारिक समाधान भी करता है।

5.असामान्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस क्षेत्र के विशेषज्ञों को कोई प्रशिक्षण नही दिया जाता है।नैदानिक मनोविज्ञान में उपचार विधियों में निपुणता हासिल करने के लिये विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

6.असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक सैद्धान्तिक शाखा है क्योंकि इसके अन्तर्गत केवल असामान्य व्यवहारों को समझने, उनके लक्षण, कारण एवं उपचार संबंधी नियम या सिद्धान्त ही बनाये जाते है। नैदानिक

मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है क्योंकि इसके अन्तर्गत ऐसे नियमों या सिद्धान्तों की व्यावहारिक उपयोगिताओं पर बल डाला जाता है।

अभ्यास प्रश्न -

1) नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक रोगों के वर्णन.....एवं पूर्वामान से होता है।

2) सिगमण्ड फ्रायड ने नैदानिक मनोविज्ञान के.....पक्ष पर सबसे अधिक बल डाला।

3) प्रथम मनोवैज्ञानिक उपचारगृह.....ने सन्.....में खोला।

4) भारतीय मनोविज्ञान संघ की स्थापना सन् .....में हुई।

5) नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की अभिक्षमता.....एवं .....का मापन करती है।

6) असामान्य मनोविज्ञान.....व्यवहारों का अध्ययन करता है।

1.8 सार संक्षेप -

नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जिसका सम्बन्ध मानसिक रोगों के वर्णन, वर्गीकरण, निदान एवं पूर्वानुमान से होता है।

i) इसमें सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है।

ii) लाइटर विटमर ने 1816 में पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में पहला मनोवैज्ञानिक उपचार गृह खोला और इस शाखा को नैदानिक मनोविज्ञान का नाम दिया।

iii) भारत में प्राचीन काल में भी नैदानिक मनोविज्ञान का अस्तित्व था। अथर्ववेद में मानसिक रोगों एवं उनके उपचार को बताया गया है।

iv) 1915 में भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का प्रारम्भ हुआ।

v) नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न क्षेत्रों में जैसे-मानसिक चिकित्सालयों, विद्यालयों, सुधारगृहों, व्यवसायिक केन्द्रों आदि में विभिन्न गतिविधियाँ रहती है।

vi) नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मनोरोग विज्ञान, मनोविश्लेषण, परामर्श मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों के साथ भी है। उन क्षेत्रों की विषय सामग्री तथा कार्यविधि नैदानिक मनोविज्ञान के साथ काफी हद तक संबंधित है।

vii) नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति विशेष की समस्याओं को समझकर उनका निदान व उपचार करते है साथ ही निर्देशन का कार्य भी करते है।

viii) नैदानिक मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान दोनों ही मनोविज्ञान की शाखाएं है परन्तु फिर भी दोनों में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक अंतर होते है।

1.9 शब्दावली -

1. निदान - किसी रोग के विशेष लक्षणों की पूरी जानकारी प्राप्त करना और उसके जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों का पता लगाना।

2.मनश्चिकित्सा - ऐसी मनोवैज्ञानिक विधियॉ जिनके द्वारा मानसिक रोगों का निदान तथा उपचार किया जाता है

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1. वर्गीकरण, निदान	2. व्यक्तित्व गतिकी
3. लाइट विटमर, 1896	4. 1984
5. अभिरूचि एवं समायोजनशीलता	6. कुसमायोजित

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. नैदानिक मनोविज्ञान को परिभाषित करिये तथा उसके विकास पर प्रकाश डालिये।

2. नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति समझाइये तथा इसके अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों का वर्णन करिये।

3. विभिन्न क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियों पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।

4. नैदानिक मनोविज्ञान भविष्य में कहाँ तक मनोविज्ञान की एक उपयोगी शाखा सिद्ध होगी, कारण सहित उत्तर बताइये।

5. नैदानिक मनोविज्ञान क्या है? असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर स्पष्ट करिये।

इकाई 2. व्यावसायिक प्रशिक्षण, विनियमन एवं नैतिक नियम (Professional Training, Regulation and Professional Ethics)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण
  2.3.1 वृत्तिक प्रशिक्षण का अर्थ
  2.3.2 वृत्तिक प्रशिक्षण का इतिहास
  2.3.3 वृत्तिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त
  2.3.4 वृत्तिक प्रशिक्षण के वैकल्पिक माँडल
2.4 वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन
  2.4.1 प्रमाणन
  2.4.2 अनुज्ञप्ति
  2.4.3 ABEPP/ ABPP
2.5 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र
  2.5.1 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नियम
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक ऐसी प्रयुक्त और लोकप्रिय शाखा है जिसमें सबसे ज्यादा मनोवैज्ञानिक कार्यरत है। इसका विकास भी शीघ्रता के साथ हुआ है और आज नैदानिक मनोविज्ञान एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में पूरे संसार में काम कर रहा है। इसमें करीब 83% नैदानिक मनोवैज्ञानिक मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में, 73.6% निदान एवं मूल्यांकन में, 61% शिक्षण में, 52.4% शोध में, तथा 67.4% परामर्श के क्षेत्र में कार्य कर रहें है। इस प्रकार आज के युग में नैदानिक मनोविज्ञान एक व्यवसाय या पेशे के रूप में अपना स्थान बना चुका है परन्तु फिर भी इस पेशे से सम्बन्धित कई समस्यायें भी है।

प्रस्तुत इकाई में नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय से सम्बन्धित जो समस्यायें है, उनके बारे में अध्ययन करके जान सकेंगें|

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है-

नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं को जान सके।

2.3 वृत्तिक प्रशिक्षण, वृत्तिक नियमन एवं वृत्तिक नीतिशास्त्र -

आधुनिक समय में नैदानिक मनोविज्ञान एक व्यवसाय/पेशा के रूप में काफी अधिक विकसित हुआ है। ये मनोविज्ञान की एक प्रमुख लोकप्रिय शाखा है। जब मनोविज्ञान को पेशे के रूप में सफलता मिलने लगी तो अधिक-से-अधिक मनोवैज्ञानिकों ने इसमें रूचि लेना प्रारंभ कर दिया। संसार के अन्य देशों में भी नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में मनोवैज्ञानिक कार्यरत है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपना चिकित्सा संबंधी कार्य किसी उपचारगृह या मानसिक चिकित्सालयों में करते है।

इस समय अमेरिका में लगभग 120000 मनोवैज्ञानिक है जिसमें लगभग 80000 नैदानिक मनोवैज्ञानिक है। आधुनिक समय में नैदानिक मनोविज्ञान एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आया है। आज जब नैदानिक मनोविज्ञान लगभग पूरे संसार मे एक पेशे या व्यवसाय के रूप में स्थान पा रहा है, तो यह आवश्यक है कि उसके इस पहलू से संबंधित कुछ समस्याएँ भी होंगी। इन समस्याओं को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया गया है-

(1) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण

(2) वृत्तिक या व्यावसायिक या पेशावर नियमन

(3) वृत्तिक या व्यावसायिक या पेशावर नीतिशास्त्र

2.3.1 वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण का अर्थ -

व्यावसायिक प्रशिक्षण का सामान्य अर्थ व्यवसाय की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा कार्यविधियों से व्यावसायिक को अवगत कराना होता है। नैदानिक मनोविज्ञान में व्यावसायिक प्रशिक्षण से तात्पर्य नैदानिक मनोवैज्ञानिक को नैदानिक मनोविज्ञान से संबंधित क्षेत्रों का इस तरह से ज्ञान देना है ताकि वे रोगी की आवश्यकताओं, समस्याओं, उनके उपचार की प्रविधियों एवं शोध प्रविधियों के बारे में भली-भाँति परिचित हो जाय। एक प्रशिक्षित नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की समस्याओं की पहचान, वर्गीकरण तथा उपचार वैज्ञानिक ढंग से करता है। इस तरह से नैदानिक मनोविज्ञान में व्यवसायिक प्रशिक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. प्रशिक्षु नैदानिक मनोवैज्ञानिक को नैदानिक समस्याओं से परिचित कराना। 2. नैदानिक समस्याओं के वर्गीकरण को समझना। 3. निदानसूचक विधियों के बारे में ज्ञान देना। 4. विभिन्न शोध विधियों के बारे में ज्ञान देना। 5. व्यक्तित्व सिद्धान्तो के बारे में ज्ञान देना। 6. चिकित्सा की परिस्थितियों से परिचित कराना।

2.3.2 वृत्तिक प्रशिक्षण का इतिहास -

20 वीं शताब्दी के प्रथम 40 वर्षों में इस क्षेत्र में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को दिये जाने वाले उच्चतर प्रशिक्षण की प्रगति बहुत ही धीमी थी। 1930 तथा 1940 वाले दशक में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने इस तरह के प्रशिक्षण को औपचारिक बनाने का प्रयास किया परन्तु यह प्रयास अधिक सफल नहीं हो पाया।

डेविड शैको ने नैदानिक प्रशिक्षण के विकास को ठीक ढंग से सफल करने में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जो बहुत दिनों तक मासासुटेस के वॉरसेस्टर स्टेट अस्पताल में मुख्य मनोवैज्ञानिक के रूप में कार्य करते रहे और बाद में नेशनल इन्स्टीच्यूट ऑफ मेन्टल हेल्थ में भी बने रहे। शैको का मत था कि नैदानिक मनोविज्ञान में चार साल का डाक्टरीय स्तर का प्रशिक्षण का कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें तीसरे साल छात्र-छात्राओं इन्टर्नशीप का भी प्रावधान होना चाहिए। शैको के विचार के प्रति कार्ल रोजर्स जो उस समय APA के अध्यक्ष थे, काफी प्रभावित हुए और वे नैदानिक मनोविज्ञान में प्रशिक्षण को तय करने के लिए कमेटी का संगठन किया और शैको को ही उसका अध्यक्ष बना दिया गया। कमेटी ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसका शीर्षक था 'रिकोमेन्डेट ग्रेजुएट ट्रेनिंग इन क्लिनिकल साइकोलॉजी' (Recommended Graduate Training in Clinical Psychology)।

2.3.3 वृत्तिक/व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त-

वृत्तिक/व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त निम्नलिखित है-

i) एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक को पहले एक मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

ii) नैदानिक प्रशिक्षण उतना ही सख्त होना चाहिए जितना कि मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का प्रशिक्षण सख्त होता है।

iii) नैदानिक मनोवैज्ञानिक की तैयारी विस्तृत होनी चाहिए और वह मूल्यांकन, शोध एवं चिकित्सा की ओर निर्देशित होना चाहिए।

iv) नैदानिक प्रशिक्षण के मुख्य विषय-वस्तु में कम से कम छह क्षेत्रों का समावेश आवश्यक है-सामान्य मनोविज्ञान, व्यवहार का मनोगतिकी, निदानसूचक विधियाँ, शोध विधियाँ, चिकित्सा एवं संबंधित शास्त्र।

v) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें नियमों या सिद्धान्तों से संबंधित सिर्फ मौलिक पाठयक्रम ही सम्मिलित हो और विशिष्ट विधियों के पाठ्यक्रमों की अधिक संख्या न हो।

vi) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें सिद्धान्त तथा अभ्यास दोनों ही सम्मिलित हों।

vii) पूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान प्रशिक्षु नैदानिक मनोवैज्ञानिक सभी तरह के नैदानिक सामग्रियों से भली-भाँति परिचित हो।

viii) प्रशिक्षण के दौरान कुछ सामान्य व्यक्तियों से भी सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए जिन्हें नैदानिक सहयोग की कभी भी आवश्यकता नहीं पड़ी हो।

ix) प्रशिक्षण कार्यक्रम का स्वरूप कुछ ऐसा होना चाहिए कि उससे प्रशिक्षु के व्यक्तित्व गुणों में बढोतरी एवं परिपक्वता आये।

x) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उससे रोगियों एवं क्लायंट के प्रति उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न हो सके।

xi) संबंधित शास्त्रों के प्रतिनिधिनों को नैदानिक मनोविज्ञान के प्रशिक्षुओं को पढ़ाना चाहिए, जहाँ तक प्रशिक्षु को इस संबंधित शास्त्रों के छात्रों के साथ एक सम्मिलित अध्ययन करवाना चाहिए।

xii) प्रशिक्षु मनोवैज्ञानिकों में प्रशिक्षण इस ढंग से क्षमता उत्पन्न कर सके कि वे समाज एवं रोगी या क्लायंट के प्रति निर्धारित उत्तरदायित्व से आगे भी कुछ सोच सके।

शैको रिपोर्ट में उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इस बात पर भी बल डाला गया है कि उसके लिए प्रति वर्ष एक पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। शैको रिपोर्ट की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक तैयारी का विशेष मिश्रण देखने को मिलता है। शायद यही कारण है कि इस रिपोर्ट पर आधारित कार्यक्रम को वैज्ञानिक पेशावर मॉडल कहा जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान का प्रथम प्रमुख प्रशिक्षण सम्मेलन 1949 में हुआ था, जिसमें शैको रिपोर्ट को औपचारिक रूप से मान्यता दी गयी। इस सम्मेलन में पारित सुझाव निम्नलिखित थे-

1.नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को शोध एवं व्यवसायिक अभ्यास में दक्ष होना आवश्यक है।

2. किसी विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त होनी चाहिए।

3.नैदानिक प्रशिक्षण को पूरा होने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को एक-साल की इन्टर्नशीप भी आवश्यक है।

इस सम्मेलन के बाद शैको की योजना को बोलडर मॉडल के नाम से जाना गया। नैदानिक मनोविज्ञान के प्रशिक्षण के क्षेत्र में बोलडर मॉडल एक प्रभावी मॉडल रहा, फिर भी 1949 से ही इसके प्रति कुछ असंतोष जाहिर किया जाने लगा। नैदानिक प्रशिक्षण के ख्याल से तीन उत्तर बोलडर हुए है जिनसे काफी महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देश मिले है। ये तीनो इस प्रकार है-

i) स्टैनफोर्ड सम्मेलन -यह सम्मेलन स्टैनफोर्ड विश्व-विद्यालय में 1955 में हुआ। यद्यपि इस सम्मेलन ने नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कोई नयी दिशा या निर्देश पारित नहीं किया गया फिर भी इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को उन व्यवसायिक भूमिकाओं के लिए तैयार रहने के लिए कहा गया जो सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान पर पड़ने के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकते है।

ii) शिकागो सम्मेलन - यह सम्मेलन शिकागो में 1965 में हुआ। इस सम्मेलन में नैदानिक प्रशिक्षण के वैज्ञानिक-व्यावसायिक मॉडल का विकल्प ढूँढने पर बल डाला गया। इसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि वैज्ञानिक पेशावर मॉडल को जारी रखते हुए नैदानिक प्रशिक्षण का पूर्णतः एक व्यावसायिक मॉडल को तैयार किया जाना चाहिए। इस सम्मेलन में नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कुछ विशेष तरह की उप-डाक्टरीय उपाधियाँ तथा Psy.D (Doctor of Psychology) की उपाधि आदि देने की भी सिफारिश की गयी। इस सम्मेलन के बाद इसमें जो सुझाव पारित हुए उससे नैदानिक प्रशिक्षण का पेशावर मॉडल (Professional training modal) तथा उप-डाक्टरीय कार्यक्रमों की लोकप्रियता बढ़ गयी।

1973 में भेल में मनोविज्ञान में व्यावसायिक प्रशिक्षण के पैटर्न एवं स्तर को निर्धारित करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 150 प्रस्ताव पारित किये गये जो नये-नये पेशावर प्रशिक्षण मॉडल, नैदानिक प्रशिक्षण के उन्नत स्तर तथा पेशावर प्रशिक्षण की विशेषताओं से संबंधित थे। नैदानिक प्रशिक्षण से सम्बन्धित छठा राष्ट्रीय सम्मेलन 1987 में साल्ट लेक शहर में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में उन परिवर्तनों का मूल्यांकन किया गया जो हाल के वर्षो में व्यावसायिक मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण में किये गये। इसमें प्रशिक्षण से संबंधित कुछ समस्याओं पर वैज्ञानिको तथा पेशावरों के बीच होने वाले टकराव को भी रोकने से संबंधित सुझाव पारित किये गए।

2.3.4 नैदानिक प्रशिक्षण के वैकल्पिक मॉडल

i). साई0डी0 कार्यक्रम (Psy.D.Programme) - साई0डी0 कार्यक्रम का आरम्भ इलिनोईस विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग द्वारा 1968 में प्रारंभ किया गया था हालॉकि बाद में इस कार्यक्रम को बंद कर दिया गया। इस कार्यक्रम में प्रशिक्षुओं को मनोवैज्ञानिक सेवा करने में आवश्यक कौशलों को सीखलाया जाता है। इसमे न तो शोध निबंध लिखने की जरूरत होती है और नही शोध-प्रबंध की परन्तु एक लिखित व्यावसायिक गुणवत्ता पूर्ण डाक्टरीय-स्तर की रिपोर्ट तैयार करने की जरूरत होती है। गोल्डेनवर्ग (1973) ने इस कार्यक्रम पर कई तरह की आपत्ति उठायी है जिसमें प्रमुख हैः-

a) इस कार्यक्रम को पी0एच0डी0 कार्यक्रम के समानान्तर रखा है इसलिए इससे लोगों में संभ्राति फैलेगी। नैदानिक अभ्यास भी एक व्यावसायी के रूप में वैज्ञानिक नहीं रह पायेगा।

b) पी0एच0डी0 कार्यक्रम तथा साई0डी0 कार्यक्रम के प्रशिक्षुओ का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और उनके निष्पादन को देखा गया। इन दोनो प्रशिक्षुओं के निष्पादन में कोई अन्तर नहीं था। इस कारण इस कार्यक्रम को पी0एच0डी0 कार्यक्रम से अधिक श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता है।

ii) व्यावसायिक स्कूल - नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कुछ व्यावसायिक स्कूल भी खोले गए है जो विश्वविद्यालय विभागों के नियंत्रण में न होकर स्वतंत्र रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाते है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय के शैक्षिक प्रतिबंध से नैदानिक प्रशिक्षण को मुक्त करना है। इसमें सक्रिय एवं अभ्यासरत प्रशिक्षुओं को एक विशेष भूमिका मॉडल प्रदान करना है। अमेरिका में ऐसे स्कूलों की संख्या लगभग 50 से ऊपर

है जिसमें अधिकतर स्कूल द्वारा नैदानिक प्रशिक्षण पूरा करने पर साई0डी0 (Psy.D) की उपाधि से सम्मिलित किया जाता है। इन व्यावसायिक स्कूलों द्वारा नैदानिक प्रशिक्षण के स्वरूप में क्रांन्तिकारी परिवर्तन लाया गया है एवं 21 वीं शताब्दी में ऐसे स्कूलों का प्रभाव और भी तीव्र एवं प्रखर होने की उम्मीद है।

2.4 वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन -

वृत्तिक या व्यावसायिक नियम से तात्पर्य कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनके माध्यम से नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की सामर्थ्यता के कुछ स्पष्ट मानक विकसित किये जाते है और आम जनता को गुमराह होने से बचाया जाता है। दूसरे शब्दों में, यहाँ उन मानकों का निर्धारण किया जाता है जो तय कर पाते है कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक में न्यूनतम कौशल है या नहीं तथा वे अपने पेशे को संचालित करने के लिए न्यूनतम योग्यता रखते है या नही। व्यावसायिक नियमन का मुख्य उद्देश्य आम जनता को अप्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये जा रहे रहे अनुपयुक्त नैदानिक सेवा से बचाना है। पेशावर नियमनों में निम्नांकित तरह के प्रावधान मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गये है-

2.4.1 प्रमाणन -

प्रमाणन एक ऐसे नियमन है इस बात पर बल डालता है कि लोग अपने आप को 'मनोवैज्ञानिक' या 'प्रमाणित मनोवैज्ञानिक' तब तक नहीं कह सकते है जब तक कि उन्हें परीक्षकों के बोर्ड द्वारा प्रभावित नहीं घोषित कर दिया जाता है। प्रमाणन की प्रक्रिया में प्रायः परीक्षा ली जाती है परन्तु कभी-कभी उम्मीदवार के प्रशिक्षण एवं व्यवसायिक अनुभूतियों के आधार पर ही प्रमाण दे दिया जाता है। इस तरह से प्रमाणन एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से समीक्षा के आधार पर ही प्रमाणन प्रदान कर दिया जाता है। इस तरह से प्रमाणन एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से 'मनोवैज्ञानिक' शीर्षक के उपयोग को सीमित करके आम जनता को किसी तरह के होने वाले दुष्परिणाम से बचाया जाता है।

2.4.2 अनुज्ञप्ति -

अनुज्ञप्ति एक अधिक मजबूत नियमन माना जाता है। अनुज्ञप्ति में न केवल 'मनोवैज्ञानिक' के शीर्षक एवं प्रशिक्षण के स्वरूप का उल्लेख होता है बल्कि इसमें उस बात का उल्लेख होता है कि संबंधित मनोवैज्ञानिक जनता से फीस लेने के बदले में किस तरह की सेवा प्रदान करने के योग्य है जो प्रशिंक्षित नैदानिक मनोवैज्ञानिक अनुज्ञप्ति चाहते है उनके विशेष आवेदन पर उनसे उपयुक्त फीस ली जाती है तथा एक विशेष लिखित परीक्षा उन्हें उत्तीर्ण करनी होती है। इस परीक्षा में सफलता के आधार पर मनोवैज्ञानिकों का एक बोर्ड उन्हें अनुज्ञप्ति देता है। अनुज्ञप्ति की आलोचना कुछ बिन्दुओं पर की गयी है जो इस प्रकार है-

a) आलोचकों द्वारा यह कहा जाता है कि कोई पक्का सबूत नही मिलता है अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) जारी करने के लिए जो लिखित परीक्षा संचालित की जाती है, उसके द्वारा मनोवैज्ञानिकों की व्यवसायिक क्षमताओं की सही-सही जाँच होती है।

b) कुछ आलोचको का मत है कि अनुज्ञप्ति की प्रक्रिया यदि जारी रहती है तो उससे जनता को हानि अधिक और लाभ कम होगा क्योंकि इस प्रक्रिया का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इससे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के बीच प्रतियोगिता मे कमी आयेगी तथा मनोवैज्ञानिकों की सेवाओं की कीमत बढ़ेगी।

2.4.3 अमेरिकन बोर्ड ऑफ प्रोफेशनल साइकोलाजी (**ABEPP/ABPP**)-

अमेरिकी संघ सरकार ने 1947 में वृत्तिक नियमन को अधिक मजबूत एवं सुस्पष्ट करने के ख्याल से एक अलग कॉरपोरेशन की स्थापना किया जिसे 'अमेरीकन बोर्ड ऑफ इक्जामिनर्स एन प्रोफेसनल साइकोलॉजी' कहा गया। 1968 में इसके लम्बे नाम को थोडा छोटा कर (ABPP) अमेरिकन बोर्ड ऑफ प्रोफेशनल साइकोलाजी कहा गया। ABPP द्वारा व्यावसायिक या वृत्तिक प्रवीणता का प्रमाण-पत्र नैदानिक मनोविज्ञान, परामर्श मनोविज्ञान, औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान तथा स्कूल मनोविज्ञान में दिया जाता है। इसमें एक मौखिक परीक्षा ली जाती है तथा उम्मीदवार को कोई एक नैदानिक केस को प्रस्तुत करना होता है। परीक्षा से पहले उनके द्वारा नैदानिक केसेज के किये गये उपचारों के रिकार्ड का विश्लेषण किया जाता है। ABPP परीक्षा में शामिल होने के लिए यह आवश्यक है कि उम्मीदवार को उसके पहले कम-से कम पाँच साल का उत्तरडाक्टरीय अनुभूति प्राप्त हो। ABPP परीक्षा के लिए जो अपेक्षाएँ हैं, वे प्रमाणन तथा अनुज्ञप्ति की तुलना में अधिक सख्त है।

2.5 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र -

जब नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने वृत्तिक या व्यावसायिक कार्य को करते है तो उनके सामने अनेक समस्यायें होती है, जैसे

1. वे किन-किन नियमों या सिद्धान्तों का पालन करे।

2. किस तरह से वे अनैतिक व अनुचित व्यवहार से निबटे आदि।

वृत्तिक या व्यावसायिक क्रियाओं के निर्धारण करने के लिए कुछ नैतिक मानक बनाये गये है तथा इन समस्याओं से निबटने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यावसायिक या वृत्तिक नीतियों की एक नियमावली तैयार की गयी है जो कुछ खास-खास व्यावसायिक क्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करता है। मनोविज्ञान में पहली ऐसी नीतियों की नियमावली का निर्माण 1953 में APA द्वारा किया गया। इस नियमावली का वर्तमान रूपान्तर को APA द्वारा 1981 में विकसित किया गया जिसे पुनः 1990 में APA द्वारा संशोधित भी किया गया। 1990 के रूपान्तरित नियमावली में एक प्रस्तावना है तथा 10 नियम है जिनके द्वारा सभी प्रमुख मनोवैज्ञानिक क्रियाओं पर प्रकाश डाला गया है अर्थात् इन नियमों द्वारा शोध, शैक्षिक मानक चिकित्सा, परीक्षण-कार्य तथा निदान आदि सभी क्रियाओं का नियंत्रण होता है। ये 10 नियम निम्नलिखित है-

2.5.1 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नियम -

i) **उत्तरदायित्व का नियम** -मनोवैज्ञानिक द्वारा जब उनकी सेवाएँ जनता को दी जाती है, तो वे अपने पेशे का उच्चतम मानक बनाये रखते है। उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यो के परिणामों का उत्तरदायित्व वे अपने कंधे पर उठाते है। उनका हर संभव प्रयास यही रहता है कि उनकी सेवा का उचित उपयोग हो सके।

ii) **सामर्थ्यता का नियम** -यह नियम इस बात पर बल डालता है कि वे अपने प्रशिक्षण एवं अनुभव के आधार पर जनता को उचित सेवा प्रदान करते है और उन्हीं उचित प्रविधियों का प्रयोग करते है।

iii) **नैतिक एवं कानून मानकों का नियम** -यह नियम इस बात पर बल डालता है कि मनोवैज्ञानिक जब आम जनता को सेवा प्रदान करते है तो वे अपने समान के मानकों एवं उसके नैतिक एवं कानूनी पक्षों का पूरा ध्यान रखते है और उसी तरह से व्यवहार करते है जो मनोवैज्ञानिकों, सहकर्मियों द्वारा जो वृत्तिक कार्य किये जाते है वे उनका अपने व्यवहारों के पड़ने वाले प्रभावों के प्रति भी सचेत रहते है।

iv) **सार्वजनिक कथन का नियम** - इसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अपने पेशे, योग्यता, कार्य तथा संगठन (जहाँ वे सेवाएँ प्रदान करते है) के बारे में सही, वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक ढंग से सार्वजनिक कथन देते है।

v) **गोपनीयता का नियम** -नैदानिक मनोवैज्ञानिक जब समस्याग्रस्त व्यक्ति या रोगी का उपचार करते है, उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करते है जिनकी गोपनीयता वे बनाकर रखते है। रोगी की ऐसी सूचनाओं को तभी अन्य व्यक्तियों को देते है जब ऐसे करने की अनुमति उन्हें रोगी या उनके कानूनी अभिभावक से प्राप्त हो जाती है।

vi) **उपभोक्ता के कल्याण से संबद्ध नियम** -मनोवैज्ञानिक उन लोगों के कल्याण एवं अखंडता की रक्षा करते है जिनके साथ वे कार्य करते हैं। वे अपने परीक्षण की प्रविधियों, उपचार एवं मूल्यांकन की प्रविधियों के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान उपभोक्ताओं को या उनकी सेवा करने वाले व्यक्तियों को दे देते है।

vii) **व्यावसायिक या वृत्तिक संबंधो का नियम** -मनोवैज्ञानिक अन्य मनोवैज्ञानिकों तथा दूसरे पेशे के लोगों के साथ अपनी आवश्यकताओं, विशेष सामर्थ्यता आदि के बारे में बातचीत करते है तथा उनके साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रखते है। वे उन संस्थाओं के दायित्व एवं विशेषाधिकार को सम्मान देते है जिनके साथ उनके अन्य सहकर्मी संबंधित होते है।

viii) **मूल्यांकन प्रविधि का नियम** - मनोवैज्ञानिक अपने कार्यो के लिए विभिन्न तरह के मूल्यांकन प्रविधियों का प्रयोग करते है। वे इन प्रविधियों के विकास, प्रकाशन एवं उपयोग पर सख्त नजर रखते है ताकि उसका दुरूपयोग न हो सके। इसके साथ ही वे ये भी करते है कि अन्य पेशे के लोग यदि इन मूल्यांकन प्रविधियों का उपयोग करते है, तो वे उसका दुरूपयोग न करें।

ix) मानव प्रयोज्यों के साथ शोध से संबंध नियम - नैदानिक मनोवैज्ञानिक जब कोई भी शोध कार्य करते है तो मानव कल्याण और उसके क्षेत्र के लाभ के लिये उनके शोध में जो प्रयोज्य भाग लेते है, वे उनके कल्याण एवं मान-मर्यादा का पूरा ख्याल रखते हैं और अपने व्यावसायिक मानदंडो के तहत ही उनके साथ व्यवहार करते हैं और उनका मार्गदर्शन करते है।

x) पशुओं के उपयोग एवं देखभाल से संबंधित नियम - मनोवैज्ञानिक को यदि पशुओं पर अपना शोध करना होता है, तो वे उसे भी मनुष्य के समान दृष्टिकोण से देखते है तथा इस बात की पूरी कोशिश करते है कि उसे किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो।

वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र मनोवैज्ञानिकों को एक खास ढंग से रोगियों या क्लांइटों को एक साथ व्यवहार करने की अनुमति देता है। नीतिशास्त्र में ये व्याख्या की गयी कि उसे क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए। इससे मनोविज्ञान का विशेषकर नैदानिक मनोविज्ञान की पेशावर लोकप्रियता अधिक बढ़ती है।

अभ्यास प्रश्न

1. नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय के रूप में मुख्य समस्यायें....., ...तथा वृत्तिक नीतिशास्त्र है।

2. शैको रिपोर्ट में नैदानिक प्रशिक्षण के .....सिद्धातों को बताया।

3. ABPP का पूरा नाम.....

4. वृत्तिक नियमन से तात्पर्य नैदानिक मनोवैज्ञानिक के .....से है।

5. वृत्तिक नीतिशास्त्र में अपने व्यवसाय या पेशे के लिए.....का निर्धारण किया जाता है|

2.5 सारांश

i) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को उस पेशे की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा कार्य विधि के बारे में बताया जाता है।

ii) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के अर्न्तगत उत्तम प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जाता है।

iii) वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन से तात्पर्य है कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक में न्यूनतम कौशल है या नहीं। नियमन का मुख्य उद्देश्य जनता को अप्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी जा रही अनुप्रयुक्त सेवा से बचाना है।

iv) वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र में कुछ नैतिक मानकों को रखा गया है तथा वृत्तिक समस्याओं से निबटने के लिये नियमावली तैयार की गई है।

2.6 शब्दावली -

i) प्रशिक्षु -ऐसे व्यक्ति जिन्हें ट्रेनिंग दी जाती है।

ii) इन्टर्नशिप - प्रशिक्षण पूरा होने से पूर्व एक निश्चित समय तक उस क्षेत्र की दी जाने वाली जानकारियाँ।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वृत्तिक प्रशिक्षण, वैत्तिक नियमन 2. 13

3. American Board of Professional Psychology 4. न्यूनतम कौशल

5. नैतिक मानको

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चरत नैदानिक मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान - डा0एच0के0कपिल - हर प्रसाद भार्गव

2.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न -

1. एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक के लिये प्रशिक्षण का क्या अर्थ होता है? प्रशिक्षण के विकास एवं सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।

2. नैदानिक मनोविज्ञान में कौन-कौन सी मुख्य वृत्तिक या व्यावसायिक समस्याये है, इनका विस्तृत वर्णन करिये।

3. नैदानिक मनोविज्ञान में वृत्तिक प्रशिक्षण एवं वृत्तिक नियमन से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं का उल्लेख करिये।

4. नैदानिक मनोविज्ञान में वृत्तिक नीतिशास्त्र का क्या अर्थ है? इसके मुख्य नियमों का वर्णन करिये।

इकाई 3. नैदानिक मनोविज्ञान एवं नैदानिक मूल्यांकन की अध्ययन विधियाँ:- साक्षात्कार, व्यक्ति इतिहास विधि एवं मानसिक स्थिति का परीक्षण (Study Methods of Clinical Psychology and Clinical Assessment:- Interview, Case History and Mental Status Examine)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नैदानिक मनोविज्ञान के अध्ययन के तरीके
3.3.1 केस अध्ययन विधि
3.3.2 नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण विधि
3.3.2.1 स्वाभाविक निरीक्षण
3.3.2.2 आत्म सलाह
3.3.2.3 नियंत्रित निरीक्षण
3.3.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण
3.3.3.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषतायें
3.3.3.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रकार
3.4 नैदानिक मूल्यांकन
3.4.1 नैदानिक साक्षात्कार
3.4.2 साक्षात्कार के प्रकार
3.4.3 साक्षात्कार के चरण
3.4.4 साक्षात्कार के गुण
3.4.5 साक्षात्कार के दोष
3.4.6 साक्षात्कार के उद्देश्य
3.5 केस इतिहास साक्षात्कार
3.6 मानसिक स्थिति परीक्षण
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य नैदानिक मूल्यांकन करना होता है। वे सभी प्रक्रियायें जिनके सहारे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को रोगी के बारे में जानने एवं समझने में मदद मिलती है, नैदानिक मूल्यांकन कहलाती है। नैदानिक मनोविज्ञान में कई विधियों का उपयोग करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और रोगी के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़ों को इकट्ठा किया जाता है। इन विधियों में प्रमुख है- केस अध्ययन विधि, नैदानिक निरीक्षण विधि, नैदानिक साक्षात्कार आदि।

इस इकाई के अन्तर्गत हम नैदानिक अध्ययन विधियों एवं मूल्यांकन का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार है-

नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आने वाली समस्त अध्ययन विधियों तथा नैदानिक मूल्यांकन का अध्ययन करना ।

3.3 नैदानिक मनोविज्ञान में अध्ययन के तरीके

प्रत्येक विषय क्षेत्र को ठीक से समझने तथा विकसित करने के लिए अध्ययन के विभिन्न माध्यमों की आवश्यकता होती है। ये माध्यम प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनो हो सकते है। ऑकडो या तथ्य एकत्रित करने के इन्ही माध्यमों को अध्ययन विधियां कहा जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में इन्हीं आकड़ों को एकत्र करने के लिए अनेक अध्ययन विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य है

3.3.1. केस अध्ययन विधि

इस विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक दोनो ही करते है। कोमर (1995) के अनुसार, ''केस अध्ययन एक व्यक्ति का विस्तृत एवं व्याख्यात्मक वर्णन होता है। यह व्यक्ति की पृष्ठभूमि, वर्तमान परिस्थितियों एवं लक्षणों का वर्णन करता है।''

इस विधि को किसी खास असामान्य व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति को असामान्य बनाने में उसके परिवार की आर्थिक, सामाजिक तथा सांवेगिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः किसी भी असामान्य व्यक्ति के रोग के बारे में तभी पता लगाया जा सकता है, जब उसके परिवार की अवस्था के बारे में पता चल सके। इस विधि द्वारा रोगी के जन्म से लेकर वर्तमान तक के जीवन का पूरा विवरण तैयार किया जाता है। इसके बाद उससे प्राप्त सामग्रियों का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण करने के बाद व्यक्ति के मानसिक रोग के मूल कारण का पता चलता है। इसके बाद चिकित्सा द्वारा उसका उपचार प्रारम्भ किया जाता है।

बेलर (1962), हुबर (1961) तथा मेनिनगर, मेमैन तथा प्रुऐसर (1962) ने केस अध्ययन विधि का एक प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप में रोगी के वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों से सम्बन्धित प्रश्न होते है। इस प्रारूप में निम्नलिखित पद है-

1. वर्तमान स्थिति -इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी के बारे में निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते है- रोगी अपने दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में कौन-कौन से कार्य करता है? परिवार के सदस्यों की राय में रोगी किस तरह का विचलित या गलत व्यवहार दिखलाता है? रोगी में चिन्ता, विषाद तथा अन्य नकारात्मक संवेग की गंभीरता कितनी अधिक है?

(2) व्यक्तित्व के बारे में - इसमें रोगी व्यक्तित्व के बारे में निम्न प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते है- क्या रोगी का स्वास्थ्य ठीक है? क्या रोगी आक्रामक है, उसे अपने संवेग पर नियंत्रण है? क्या उसमें धनात्मक या ऋणात्मक संवेग की अधिकता होती है? रोगी का व्यवहार दूसरों लोगो के साथ कैसा है? रोगी का अन्य लोगो के साथ संबंध कैसे है?

(3) सामाजिक सम्बन्ध - इसमें निम्न सूचनाएँ प्राप्त की जाती है- रोगी किस तरह के लोगों से अपना संबंध रखता है? रोगी के अपने माता-पिता, बच्चों तथा पति या पत्नी के साथ कैसा संबंध है?

(4) व्यक्तित्व विकास - इसमें रोगी के व्यक्तित्व विकास से संबंधित सूचनाओं को इकत्र किया जाता है। इस सिलसिले में रोगी के प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों को उसके माता-पिता, भाई-बहन आदि से प्राप्त किया जाता है। यह पता लगाया जाता है कि क्या उसका प्रारम्भिक विकास ठीक तरह से हुआ है या नहीं।

(5) केस निर्माण - इसमें रोगी से निम्न तरह की सूचना प्राप्त करने की कोशिश की जाती हैा उसके मनोवैज्ञानिक असमायोजन को समझने की कोशिश की जाती है और यह पता लगाया जाता है कि वह किन-किन क्षेत्रों में ठीक ढंग से कार्य करता है तथा किन-किन क्षेत्रों में वह ठीक ढंग से कार्य नही कर पाता है?

(6) उपचार या हस्तक्षेप -इसमे रोगी के पर्यावरणीय एवं सामाजिक कारकों मे परिवर्तन करने की कोशिश की जाती है, जिससे उसकी समस्या कम हो जाय। उसके साथ परामर्श करके उसके (रोगी के) जिन्दगी की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन लाकर उसके तनाव को कर सकते है। यदि रोगी ज्यादा गम्भीर है तो उसकी समस्या के अनुरूप मनोचिकित्सा दी जाती है

(7) भविष्य के पूर्वानुमान -नैदानिक चिकित्सा या हस्तक्षेप के बाद रोगी के भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

गुण-

(i) इस विधि द्वारा गहन तथा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(ii) इस विधि से वर्तमान रोग के निदान में मदद मिलती है तथा भविष्य में संभावित नैदानिक हस्तक्षेपों (उपचार) को करने में मदद मिलती है।

(iii) नैदानिक केस अध्ययन विधि द्वारा रोगी के रोग के स्वरूप को सही-सही समझा जा सकता है।

दोष-

(i) इस विधि में सम्मिलित किए गए प्रश्नों को ठीक ढंग से तैयार करने के लिए सूझ-बूझ, समझ एवं कौशलता की अधिक जरूरत पड़ती है।

(ii) इससे प्राप्त जानकारी लोगों के स्मरण पर निर्भर करती है। इस कारण गलत जानकारी प्राप्त हो सकती है।

(iii) इस विधि द्वारा गंभीर रूप से मानसिक रोगियों का नैदानिक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इसलिये साधारण मानसिक रोगियों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

3.3.2. नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण विधि

नैदानिक प्रेक्षण विधि द्वारा मानसिक रोगियों के व्यवहार का सीधे निरीक्षण किया जाता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक प्राप्त आँकडों का विश्लेषण करके एक निश्चित नैदानिक निर्णय पर पहुँचते है। यह एकमात्र ऐसी पद्धति है जिसमें व्यवहार जैसा घटित हो रहा है, उसका वैसा ही नोट किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में निम्नलिखित तीन निरीक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है-

(i) स्वाभाविक निरीक्षण

(ii) आत्म-सलाह

(iii) नियंत्रित निरीक्षण

3.3.2.1 स्वाभाविक निरीक्षण

इस विधि में प्रेक्षक रोगी के व्यवहारों का सीधा निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति जैसे-स्कूल, घर, दफ्तर आदि में करते है। इसमें रोगी के जिस व्यवहार का निरीक्षण करना हो उसे पहले निर्धारित कर लेते है और उसके बाद उसका निरीक्षण करते है।

स्वाभाविक निरीक्षण के तीन प्रकार होते है-

(i) घरेलू निरीक्षण -इस तरह के निरीक्षण में नैदानिक मनोवैज्ञानिक या प्रेक्षक रोगी के घर पर जाकर उनके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किए निरीक्षणों को रिकार्ड करता है।

(ii) स्कूल निरीक्षण -नैदानिक बाल मनोवैज्ञानिक स्कूल के कुछ व्यवहारात्मक समस्याओं का सीधा निरीक्षण करके नैदानिक मूल्यांकन करते है। ऐसी समस्याओं में बच्चों का खेल के मैदान में उनका व्यवहार आक्रामक होना, अत्यधिक डरा रहना, एकाग्रता की कमी तथा शिक्षक के साथ हमेशा चिपका रहना आदि होते है।

(iii) चिकित्सालय निरीक्षण - इस तरह के निरीक्षण में अस्पताल के नैदानिक विशेषज्ञ रोगी के व्यवहार का अस्पताल में निरीक्षण करते है। इसके लिए मापनी का उपयोग किया जाता है। विट्टेनवार्न (1955) ने एक विशेष प्रेक्षणात्मक मापनी विकसित किया जिसे विट्टेनवार्न मनश्चिकित्सीय रेटिंग मापनी कहा गया। इसमें 52 मापनी होते है और प्रत्येक में कई कथन होते है जिनके सहारे रोगी के व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है।

गुण-

(i) स्वाभाविक निरीक्षण में रोगियों के व्यवहारों का निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है, अतः इससे प्राप्त आँकडों में शुद्धता होती है।

(ii) इस विधि द्वारा गंभीर एवं कम असमायोजित दोनों ही तरह के रोगियों के व्यवहारों का निरीक्षण आसानी से किया जाता है।

दोष -

(i) निरीक्षण विधि द्वारा जब निरीक्षण किया जाता है तो इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्ति होना आवश्यक होता है, तभी इसके परिणाम शुद्ध एवं विश्वसनीय आते है।

(ii) इस विधि द्वारा नैदानिक मूल्यांकन करने में धन, समय एवं श्रम काफी अधिक लगते है।

3.3.2.2 आत्म सलाह

इस विधि में व्यक्ति अपने व्यवहारों, चिन्तन एवं संवेगों का निरीक्षण स्वयं करता है तथा स्वयं ही उसका अंकन (रिकार्डिग) भी करता है। इस विधि में चिकित्सक रोगी को एक डायरी दे देता है। जिसमें वह एक निश्चित समय तक अपने व्यवहारों की तीव्रता, आवृत्ति तथा अवधि को डायरी में रोजाना लिखते जाता है। इस विधि का प्रयोग कुछ विशेष नैदानिक समस्याओं जैसे-मोटापा, धूम्रपान, मद्यव्यसनता के मूल्यांकन में किया जाता है।

गुण -

(i) इस विधि में रोगी का ध्यान अपने रोजमर्रा के गलत व्यवहारों पर जाता है। जिसके कारण उनमें स्वयं ही इसे नियंत्रित करने की विशेष प्रेरणा जगती है।

(ii) इस तरह की विधि द्वारा निरीक्षण करने के समय, श्रम एवं धन तीनों की काफी बचत होती है।

दोष -

(i)कभी-कभी रोगी अपने व्यवहारों का निरीक्षण सही ढंग से नहीं करता। वह अपने व्यवहारों के निरीक्षणों को जान-बूझ कर विकृत कर देता है।

(पi) गंभीर मानसिक रोगियों के लिए इस तरह की विधि उपयुक्त नही होती है।

3.3.2.3 नियंत्रित निरीक्षण

इस तरह की विधि में प्रेक्षक रोगियों या व्यक्तिओं के व्यवहारों को एक नियंत्रित परिस्थिति में रखकर निरीक्षण करते है और उसका नैदानिक मूल्यांकन करते है। बच्चों में धोखेबाजी व्यवहार जैसे-चोरी करना, झूठ बोलना, बेईमानी करना आदि से संबंधित नैदानिक समस्याओं का मूल्यांकन करने के लिए इसे प्रयोग किया जाता है।

गुण-

(i)इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक को स्वाभाविक परिस्थिति के उत्पन्न होने तक इंतजार नहीं करना पड़ता है। इसलिए इसमें कम समय लगता है और नैदानिक मूल्यांकन जल्दी होता है।

दोष-

(i) निरीक्षण द्वारा गंभीर मानसिक समस्याओं का निरीक्षण ठीक ढंग से नहीं किया जाता है।

3.3.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण

नैदानिक परीक्षणों का नैदानिक मूल्यांकन में विशेष स्थान है। क्रॉनबैक (1965) के अनुसार ''परीक्षण व्यक्ति के व्यवहारों को प्रेक्षण करने तथा उसे एक संख्यात्मक मापनी या श्रेणी पद्धति द्वारा वर्णन करने की एक क्रमबद्ध कार्य-विधि है।'' असामान्य व्यवहार के अध्ययन के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

3.3.3.2 नैदानिक परीक्षणों के प्रकार

मनोवैज्ञानिक परीक्षण शाब्दिक या अशाब्दिक हो सकते है। प्रशासन की दृष्टि से व्यक्तिगत या सामूहिक हो सकते है। व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों का मापन इन परीक्षणों द्वारा किया जाता है। इन परीक्षणों के निम्नलिखित प्रकार है

(1) बुद्धि परीक्षण -इस परीक्षण द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की वर्तमान सामान्य क्षमता का मापन करते है। बौधिक क्षमता का मापन करके नैदानिक मनोवैज्ञानिक यह पता करते है कि व्यक्तित्व विघटन से कितनी मात्रा में रोगी की बुद्धि प्रभावित हुई है। बुद्धि परीक्षण के निम्नलिखित प्रकार है-

(a) बिने परीक्षण - बिने परीक्षण का निर्माण फ्रांस में 1905 में किया गया था। इसका संशोधन 1960 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया गया जो तीसरा संशोधन था। बुद्धि परीक्षण 4 से 12 साल के बच्चों के लिए उपयुक्त है।

(b) वेक्सलर मापनी - वेक्सलर ने व्यक्तियों की बुद्धि मापने के लिए तीन मापनी बनाये है- (Wechsler Adult Intelligence Scale (WAIS), (Wechsler Intelligence Scale for Children (WISC), तथा (Wechsler Preschool and Primary Scale of Intelligence (WPPSI)। WAIS द्वारा वयस्कों की बुद्धि मापी जाती है, WISC द्वारा 6 से 16 साल के बच्चों की बुद्धि मापी जाती है तथा WPPSI 4 साल से 6 साल के उम्र तक के बच्चों की बुद्धि मापी जाती है। इन तीनो परीक्षणों में शाब्दिक परीक्षण तथा क्रियात्मक परीक्षण होते हैं।

(c) गुडएनफ ड्रा-ए-मैन परीक्षण -इस परीक्षण का निर्माण गुडएनफ द्वारा 1926 में किया गया। इसमें बुद्धि मापे जाने वाले बच्चे को एक पुरूष का चित्र बनाना होता है। चित्र बनाने में लगा समय एवं उसकी सामान्य आकृति के आधार पर बुद्धि की माप की जाती है।

(d) रैवेन प्रोग्रसिव मैट्रीसेज - इस परीक्षण का निर्माण ग्रेट-ब्रिटेन में जे0सी0 रैवेन द्वारा 1936 में किया गया। यह बुद्धि का एक अशाब्दिक माप है । इस परीक्षण द्वारा ज्यामितिक चित्रों में तार्किक संबंधों को ढूँढा जाता है और बुद्धि का मापन होता है।

(2) अभिक्षमता परीक्षण - कक्षा में छात्रों की अभिक्षमता से सम्बन्धित समस्याओं को इस परीक्षण द्वारा मापा जाता है। जैसे-अंकगणित, संस्कृत, अंग्रेजी आदि सीखने संबंधित समस्या। उन समस्याओं की पहचान की जाती है और उनकी पहचान करके उपचार प्रदान किया जाता है।

(3) मस्तिष्कीय क्षति मापने का परीक्षण - बहुत सारे रोगी ऐसे होते है जिनके मस्तिष्क में कुछ आंगिग परिवर्तन हुए होते है। आंगिक परिवर्तन की मात्रा अधिक होती है तो मेडिकल विधि जैसे-एक्स रे (X-ray) तथा EEG प्रविधियों द्वारा उनका पता आसानी से चल जाता है। परन्तु जब इसकी मात्रा कम होती है, तो कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का सहारा लेना पड़ता है।

(4) व्यक्तित्व परीक्षण - नैदानिक समस्याओं तथा व्यक्ति के व्यवहार के निरीक्षण के लिए व्यक्तित्व परीक्षणों का सहारा लिया जाता है। इन परीक्षणों द्वारा रोगी की मानसिक स्थिति की पहचान की जाती है। जिससे चिकित्सकों को रोगी के उपचार करने में सहायता मिलती है। इसके लिए व्यक्तित्व प्रश्नावली, व्यक्तित्व मापनी तथा प्रक्षेपण तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

प्रक्षेपण तकनीक में परीक्षण के पद अधूरे तथा असंरचित होते है। इस तकनीक द्वारा मानसिक रोगी अपनी दबी हुई इच्छाओं, विचारों, भावनाओं, संवेगों, को व्यक्त करता है। इन परीक्षणों में रोशा स्याही धब्बा परीक्षण तथा टी0ए0टी0 प्रसिद्ध है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के गुण -

1. इनके द्वारा प्राप्त परिणाम विश्वसनीय तथा वैध होते है।
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्ति के समस्त शील गुणों- बुद्धि, अभिक्षमता, उपलब्धि, रूचि व जीवन मूल्य, चिन्ता, समायोजन, संवेगात्मकता आदि के साथ-व्यक्तित्व को समझने में सहायक है।
3. इनका उपयोग मानसिक रोगियों के रोग को समझने, निदान करने, उपचार तथा असामान्य व्यवहार सम्बन्धी अनेक अनुसन्धानों में होता है।
4. इनका उपयोग समस्याग्रस्त व्यक्तियों के परामर्श मे भी किया जाता है।

दोष -

1. अनेक सूक्ष्म व्यक्तित्व गुणों का मापन इनके द्वारा कठिन है।
2. अधिकांश परीक्षण निश्चित आयु या श्रेणीं वर्गो के लिए होते है मानसिक रोगियों के लिए उपयोग करते समय अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती है।
3. जो मानसिक रोगी अत्यन्त विषाद व उत्तेजित अवस्था में होते है, उनके परीक्षण की संभावना कम हेाती है।

3.4 नैदानिक मूल्यांकन -

नैदानिक मूल्यांकन एक ऐसी प्रविधि है, जिसमें व्यक्तियों के बारे में तरह-तरह की सूचनायें एकत्रित की जाती है और एक विशेष निर्णय लिया जाता है। नैदानिक मूल्यांकन को नैदानिक मनोविज्ञानी या मनोचिकित्सक करते है। नैदानिक मूल्यांकन के सहारे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को रोगी के बारे में जानने एवं समझने में मदद मिलती है। कोरचिन के अनुसार '' **नैदानिक मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके सहारे रोगी से संबद्ध महत्त्वपूर्ण निर्णय करने के लिए चिकित्सक रोगी को पूर्णरूपेण समझने की कोशिश करता है।''**

चिकित्सकों द्वारा रोगी को समझने की दिशा में किया गया कोई भी प्रयास नैदानिक मूल्यांकन कहा जाएगा।इस प्रकार नैदानिक मूल्यांकन सूचनाओं के विभिन्न पहलुओं को संग्रहित करता है। जिसके द्वारा व्यक्ति की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन होता है।

नैदानिक साक्षात्कार:-

साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन का एक सबसे अच्छा तरीका है। साक्षात्कार विधि में आमने-सामने बैठकर मौखिक शाब्दिक आदान-प्रदान किया जाता है। इसमें एक व्यक्ति जो मौखिक प्रश्न पूछता है उसे साक्षात्कारकर्त्ता तथा जो उत्तर देता है उसे उत्तरदाता या साक्षात्कार देने वाला कहते है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता सामने उपस्थित व्यक्ति या व्यक्तियों से मौखिक प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता उसके मौखिक उत्तर देता है। इस प्रकार शाब्दिक आदान-प्रदान से साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से उसकी भावनाओं, विश्वासों, अनुभवों, विचारों, वर्तमान मानसिक स्थिति तथा भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में जानकारी एकत्रित करता है।

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा साक्षात्कार विधि का प्रयोग बहुत पुराना है। इसके निम्न उपयोग है

1. मानसिक रोगियों को समझने में,
2. रोग के कारकों को जानने में,
3. रोगों के उपचार में,
4. तथ्य एकत्रित करने में।

साक्षात्कार विधि में (1) साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से मौखिक रूप से प्रश्न पूछता है। (2) उत्तरदाता पूछे गये प्रश्नों के उत्तर मौखिक रूप से देता है। (3) इस शाब्दिक आदान-प्रदान का उद्देश्य अनुसन्धान की आवश्यकता की पूर्ति होना अनिवार्य है।

साक्षात्कार विधि में प्रश्नों के प्रकार:- इस विधि में प्रश्नों का स्वरूप दो प्रकार का होता है

(1) खुले प्रश्न जिसमें उत्तरदाता को कोई विकल्प नहीं दिया जाता। वह अपनी इच्छा के अनुरूप पूछे गये प्रश्न के उत्तर देता है। असामान्य व्यवहार सम्बन्धी अध्ययनों में साक्षात्कार के दौरान प्रायः खुले प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

(2) बन्द प्रश्न इसमें पूछे गये प्रश्न के विकल्प भी दिये रहते हैं और उत्तरदाता को उनमें से एक विकल्प का चयन करना पड़ता है।

3.4.2 साक्षात्कार के प्रकार

(1) मानकीकृत साक्षात्कार - इसमें उत्तरदाता से पूछे जाने वाले प्रश्नों का निर्धारण साक्षात्कार प्रारम्भ करने के पूर्व ही कर लिया जाता है। प्रश्नों की भाषा, प्रश्नों का क्रम तथा संख्या सुनिश्चित रहती है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता को शब्दों को बदलने या प्रश्नों के क्रम को बदलने या नये प्रश्न गठित करने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। असामान्य व्यवहार तथा नैदानिक साक्षात्कारों में साक्षात्कार का यह रूप बहुत ही कम किया जा सकता है।

(2) अमानकीकृत साक्षात्कार - इसमें प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या आदि का निर्धारण पहले से नहीं किया जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता के सामने केवल साक्षात्कार करने का उद्देश्य स्पष्ट रहता है। उसे प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या तथा नये प्रश्न गठित करने की स्वतंत्रता होती है। वह रोगी के अनुसार अपनी बुद्धि-विवके द्वारा प्रश्नों को घटा-बढ़ा सकता है। इसमें पूछे गये प्रश्न मुक्त अथवा खुले हुये होते है।

असामान्य व्यवहार के अध्ययन में साक्षात्कार:- असामान्य व्यवहार के अध्ययन में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसका प्रयोग बहुत पहले से हो रहा है। साक्षात्कार व्यवहार को समझने का एक महत्त्वपूर्ण ढंग है। असामान्य व्यवहार के अध्ययन में ज्यादातर अमानकीकृत/ असंरचित साक्षात्कार का उपयोग होता है। इसमें प्रश्न भी खुले हुये होते हैं। इससे मानसिक रोगी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की जा सके। इन साक्षात्कारों का उद्देश्य रोग का निदान करना हो सकता है जिससे रोगी के मानसिक रोग के स्वरूप तथा रोग के कारणों की जानकारी प्राप्त हो सके। असामान्य व्यवहार अत्यन्त जटिल तथा गहन है। साक्षात्कार के अमानकीकृत होने के कारण तथा खुले प्रश्नों के उपयोग के कारण साक्षात्कारकर्त्ता अत्यन्त गहराई में जा सकता है क्योंकि उसे उत्तरदाता के उत्तरों के आधार पर बीच-बीच में प्रश्न पूछने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। इस प्रकार वह रोगी के विषय में गहराई से जानकारी प्राप्त कर सकता है।

3.4.3 साक्षात्कार के चरण या साक्षात्कार करने की विधि

साक्षात्कार का उपयोग करने में पर्याप्त अनुभव, कुशलता तथा सतर्कता की आवश्यकता होती है। साक्षात्कार किन उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है और किन लोगों का किया जा रहा है, इसके आधार पर एक साक्षात्कार प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण हो सकते है।

1. **पूर्व तैयारी**: जब साक्षात्कार विधि का प्रयोग करना होता है तो इसके लिए पूर्व तैयारी करना आवश्यक है। सबसे पहले साक्षात्कारकर्ता को यह निश्चित कर लेना चाहिये कि वह मानकीकृत या अमानकीकृत साक्षात्कार में से किसे चुनेगा। साक्षात्कार के लिए प्रश्न खुले होंगे या बन्द, प्रश्नों की भाषा कैसी होगी, उनकी संख्या कितनी होगी आदि। अध्ययनरत सैम्पल का चयन, साक्षात्कार का स्थान, समय, संभावित अड़चनों, प्रयुक्त उपकरणों आदि के विषय में पूर्व तैयारी करना आवश्यक है।

2. **मित्रतापूर्ण वातावरण का निर्माण**: साक्षात्कारकर्त्ता तथा उत्तरदाता के बीच प्रेमपूर्ण तथा विश्वासपूर्ण सम्बन्ध का स्थापित होना आवश्यक होता है तभी उत्तरदाता से उसके बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्वयं को तटस्थ, सम्मानित तथा साक्षात्कार को गम्भीरता से लेने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए तथा रोगी के प्रति रूचि भी दिखानी चाहिये। कुल मिलाकर उसे रोगी का विश्वास जीत कर मित्रतापूर्वक व्यवहार दिखाना चाहिये।

3. साक्षात्कार की प्रक्रिया:- जब साक्षात्कार की पूरी तैयारी हो जाये तथा उत्तरदाता के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाये तो उससे प्रश्न पूछने आरम्भ करने चाहिए। प्रारम्भ में उसका नाम, स्थान, काम तथा माता-पिता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसके पूर्व तैयारी इसके बाद अपने अनुसन्धान की आवश्यकता के अनुरूप प्रश्न पूछना चाहिये। प्रश्नों की भाषा सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिये।

4. साक्षात्कार की समाप्ति:-जब अनुसन्धानकर्त्ता को रोगी से उसके बारे में सभी जानकारियॉ मिल जाती है तथा अनुसन्धान से सम्बन्धित कोई पक्ष छूटता नहीं है। तब उसे धन्यवाद एवं मुस्कराहट के साथ साक्षात्कार को समाप्त कर देना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर फिर से मिलने का आश्वासन देते हुये साक्षात्कार समाप्त करना चाहिये।

5. साक्षात्कार अंकन:- अंकन या रिकार्डिग रोगी के साथ किये गये साक्षात्कार की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। साक्षात्कार के दौरान ही रोगी द्वारा दी गई जानकारियों का अंकन करना चाहिए, क्योंकि विस्मरण आदि कारक उत्तरों की को अशुद्धता कर सकते है, साथ ही उनका अंकन करते रहना चाहिये। इसके लिये यन्त्रों तथा उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिये।

6. तथ्यों का विश्लेषण:- रोगी द्वारा जो भी जानकारियॉ प्राप्त होती है उसकी कोडिंग, सारणी बनानी चाहिए। उन्हें किसी कोड़ या नम्बर प्रदान करके सांख्यिकीय पद्धतियों से विश्लेषण करना चाहिये।

7. प्रतिवेदन (रिपोर्ट) का प्रस्तुतीकरण:- साक्षात्कार की (प्रतिवेदन) रिपोर्ट सरल ढंग से की जानी चाहिये। इसमे साक्षात्कारकर्त्ता को स्वयं कोई भी सामग्री को नही जोड़ना चाहिये। इसमें साक्षात्कार की वैधता तथा विश्वनीयता का उल्लेख करना जरूरी होता है।

8. निष्कर्ष:- प्रतिवेदन को साक्षात्कारकर्त्ता अपने सहयोगियों तथा उस विषय के अन्य जानकारों के साथ विचार-विमर्श कर सकता है। साक्षात्कार विधि सरल होने के साथ-साथ जटिल भी है इसके लिये पूर्ण सावधानी, सतर्कता तथा धैर्य की आवश्यकता होती है।

3.4.4 गुण

1)साक्षात्कार का उपयोग बडे जन समुदाय पर किया जा सकता है।

2) साक्षात्कार की विधि लचीली होती है जिस कारण अनुसन्धान के उद्देश्य के अनुरूप उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

3) साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता की मौखिक प्रतिक्रियाओं को ज्ञात करता है साथ ही उत्तर देते समय उसके व्यवहार का निरीक्षण भी करता रहता है।

4) अधिक गहन साक्षात्कार द्वारा सूक्ष्म जानकारी एकत्रित की जा सकती है।

5) व्यक्तियों के पूर्व अनुभवों, विश्वासों, भावनाओं, अभिवृत्तियों का ज्ञान साक्षात्कार द्वारा प्राप्त करना संभव है।

3.4.5 दोष

1) जब मानसिक रोगियों या समस्याग्रस्त व्यक्तियों के लिए साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है तो इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण, अनुभव होना जरूरी होता है। इस श्रेणी के साक्षात्कारकर्त्ताओं की कमी रहती है।

2) जो लोग उत्तर देने में संकोच, असुविधा या वास्तविकता को बताने में डरते हैं उनका साक्षात्कार करना कठिन है।

3) साक्षात्कार में उत्तरदाता अनेक बार गुमराह कर सकता है।

4) उत्तरों की गोपनीयता प्रश्नावली की तुलना में कम रहती है।

3.4.6 नैदानिक साक्षात्कार के उद्देश्य

नैदानिक साक्षात्कार का सामान्य उद्देश्य नैदानिक मूल्यांकन के लिए महत्त्वपूर्ण आँकडों को एकत्र करना होता है। इसके अलावा इस तरह के साक्षात्कार के कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी होते हैं जो निम्नलिखित है-

i) नैदानिक कार्य को सम्पन्न करने के लिए आपसी संबंध स्थापित करना।

ii) रोगी की समस्याओं के बारे में महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त करना।

iii) अपनी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए तथा अपने-आप को उन्नत बनाने के लिए।

नैदानिक साक्षात्कार के प्रकार-

नैदानिक साक्षात्कार के कई प्रकार है। जिनमें से दो महत्त्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित है-

1) केस इतिहास साक्षात्कार

2) मानसिक स्थिति परीक्षण।

3.5 केस-इतिहास साक्षात्कार -

केस-इतिहास साक्षात्कार जिसे सामाजिक-इतिहास साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस विधि द्वारा रोगी को व्यक्तिगत एवं सामाजिक इतिहास तैयार किया जाता है। इस तरह के साक्षात्कार में बचपन तथा वयस्कावस्था की अनुभूतियों के बारे में सूचना एकत्रित की जाती है। इसमें शैक्षिक, लैंगिंक, मेंिडकल, धार्मिक, माता-पिता के प्रभावों एवं मनोविकृतियों से संबंधित तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें रोगी की सांवेगिक अनुभूतियों की समस्याओं की खोज एवं पहचान पर कम ध्यान डाला जाता है।

केस इतिहास साक्षात्कार से रोगी के बारे में जो आँकडे तैयार होते है, उसका विशेष फायदा यह होता है कि उसके माध्यम से रोगी के व्यक्तित्व एवं कार्य को समझने में काफी मदद मिलती है।

सुन्डवर्ग (1977) ने केस साक्षात्कार का एक प्रारूप तैयार किया है जिसके माध्यम से रोगी के बारे मे महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त की जा सकती है। इस प्रारूप में निम्नलिखित 16 एकांशों को रखा गया है-

i) पहचान संबंधी आँकडे -इसमें रोगी का नाम, यौन, पेशा, पता, जन्म-तिथि, जन्म स्थान, धर्म तथा शिक्षा आदि के बारे में सूचनायें एकत्रित की जाती है।

ii) उपचार गृह -इसमें आने का कारण तथा वहाँ की सेवाओं के बारे में रोगी की प्रत्याशाओं या उम्मीद।

iii) **वर्तमान परिस्थिति** -इसमें रोगी अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार के बारे में बतलाता है वह वर्तमान में स्वयं क्या परिवर्तन चाहता है।

iv) **पारिवारिक समूह** -इसमें रोगी से उसके परिवार के सदस्यों के व्यवहारों जैसे- माता के व्यवहार, पिता के व्यवहार तथा परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहारों के बारे में सूचना प्राप्त की जाती है। रोगी अपने परिवार कें लिए सदस्यों की भूमिकाओं को बतलाता है।

v) **प्रारम्भिक स्मृति** -इसमें रोगी अपने बचपन की प्रमुख घटनाओं एवं स्मृतियों के बारे में बताता है।

vi) **जन्म एवं विकास** - इसमें रोगी या उसके बारे में जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह बतलाता है कि उसने किस उम्र में चलना प्रारंभ किया था, किस उम्र में बोलना प्रारंभ किया था, अपने उम्र के अन्य बच्चों की तुलना में उनकी कौन-कौन सी समस्याएँ थी तथा रोगी अपने बचपन की अनुभूतियों के प्रति कैसा विचार रखता था।

vii) **स्वास्थ्य** -बचपन में उसका स्वास्थ्य कैसा था, अभी उसका स्वास्थ्य कैसा है? किसी गंभीर बिमारी से तो वह प्रभावित नहीं था या है, उसे कोई दवा या अल्कोहल लेने से संबंधित समस्या तो नहीं थी याहै आदि के बारे में रोगी बताता है।

viii) **शिक्षा** - इसमें रोगी अपनी शिक्षा-दीक्षा के स्तर के बारे में बतलाता है तथा वह अपनी विशेष अभिरूचियों एवं उपलब्यिों के बारे में भी बताता है।

ix) **कार्य रिकार्ड** - वह कौन-सा नौकरी या कार्य करता है, उस कार्य से वह संतुष्ट है या नहीं।

x) **अभिरूचियाँ** -इसमें रोगी अपने ऐच्छिक कार्य, पढ़ाई, अभिरूचि, हॉबी आदि के बारे में बतलाता है।

xi) **लैंगिक विकास** -इसमें रोगी अपने प्रथम लैगिंक अनुभूतियों को बतलाता है तथा लैगिंक क्रियाओं के प्रकार के बारे में भी बतलाता है।

xii) **पारिवारिक आँकडे** -इसमें वैवाहिक जिन्दगी की संतुष्टि के बारे में, अपने बच्चों के बारे में तथा उनके साथ सम्बन्धों को बताता है।

xiii) **आत्मवर्णन** - इसमें रोगी अपने कमजोरियों, विशेषताओं एवं अपने आदर्शो के बारे में बतलाता है।

ixx) **पसंद एवं निर्णय** -यहाँ रोगी अपने जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण पसंद, निर्णयों को बताता हैं।

xx) **भविष्य के प्रति सोच** -यहाँ रोगी अगले कुछ वर्षो में क्या घटने की उम्मीद करता है। वह भविष्य के बारे में क्या सोचता है? भविष्य के प्रति कोई आशंका या डर तो नही है।

xxi) **अन्य कोई सूचना** -यहाँ रोगी को अपने बारे में वैसी सूचना देने को कहा जाता है जिसे अबतक उसे पूछा नही गया हो या कोई ऐसी बात जो उसे परेशान करती है और जिसके सम्बन्ध में वह किसी अन्य से बात नहीं कर पाता है।

केस-इतिहास साक्षात्कार में उपरोक्त सूचनाओं को रोगी से ही पूछा जाता है। परन्तु कभी-कभी विशेष परिस्थिति में जैसे जब रोगी छोटा बालक है या किसी कारण से सूचना देने योग्य नहीं है या मानसिक रूप से दुर्बल है तो वैसी परिस्थति में रोगी के परिवार का कोई सदस्य रोगी के बारे में जानकारी देता है।

3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय

यह एक एक असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षण है मानसिक स्थिति परीक्षा या मानसिक स्थिति साक्षात्कार को साक्षात्कार का ही एक विशेष रूप माना गया है। इस तरह के साक्षात्कार का महत्व अधिक है। मानसिक अस्पतालों में अधिक गंभीर रूप से भर्ती हुए मानसिक रोगियों के लिये किया जाता है। यह एक ऐसा विशेष साक्षात्कार होता है, जिसमें चिकित्सक रोगी के बारे में सभी सूचनाओं को निरीक्षण द्वारा एकत्र करता है। ये साक्षात्कार मेडिकल डाक्टरों द्वारा रोगी का किये गये शारीरिक परीक्षण के समान होता है। इसमें कुछ खास-खास निश्चित प्रश्नों को रोगी से पूछा जाता है। चिकित्सक प्राप्त आँकड़ों के आधार पर एक और अन्त में रोगी के बारे में एक ऐसे निश्चित निदान पर पहुॅचते है। जिससे कि रोगी के लक्षणों, उसके रोग की गंभीरता, इतिहास तथा भविष्य में होने वाले व्यवहार के बारे में पता चलता है। इस तरह की परीक्षा पूरे साक्षात्कार के दौरान चलती है। बेल्स एवं रूस्क (1945) के अनुसार इस तरह के साक्षात्कार में रोगी की अभिव्यक्ति, व्यवहार, संवेग, मनोदशा, चिन्तन, बुद्धि तथा असामान्य व्यवहारों जैसे दुर्भीति एवं व्यामोही विचार आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

मानसिक स्थिति परीक्षा में नैदानिक मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक मुख्य रूप से निम्नलिखित सूचनायें प्राप्त करने की कोशिश करते है।

1) **सामान्य व्यवहार** -इसके तहत नैदानिक विशेषज्ञ रोगी के हाव-भाव, पोशाक, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, उसकी सक्रियता स्तर आदि पर विशेष रूप से ध्यान, देते है और उसके व्यवहार का प्रेक्षण करते है।

2) **बातचीत एवं चिन्तन** - यहॉ नैदानिक विशेषज्ञ इस बात का निरीक्षण करते है कि क्या रोगी बातचीत ठीक तरह से करता है? क्या वह एक सामान्य रूप से बात-चीत करता हैघ् रोगी बहुत देर तक बात-चीत के दौरान चुप रहता है? क्या रोगी को अपने भावों को व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव होता है?

3) **ध्यान** -नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की चेतना से सम्बन्धित प्रश्नों को जानते है। क्या रोगी सतर्क तथा ध्यानमग्न रहता है? आदि

4) **प्रत्यक्षण** -क्या रोगी का प्रत्यक्षण सामान्य है? उसमें विभ्रम आदि तो नहीं है।

5) **मनोग्रस्ति एवं बाध्यता** - क्या रोगी में बाध्यतापूर्ण व्यवहार दिखाई देता है। (जैसे, बार-बार अपने नब्ज की जॉच करना) आदि घ् क्या रोगी के दिमाग में एक ही तरह के विचार आते है?

6) **स्मृति - क्या** रोगी पहले घटी घटनाओं के बारे में बतला पाता है? क्या कुछ सेकंड या मिनट पहले की घटनाओं को याद रख पाता है?

7) **ध्यान** - क्या रोगी का ध्यान आसानी से हट जाता है। वह किसी वस्तु या घटना पर ध्यान लम्बे समय तक लगा पाता है

8) **सामान्य ज्ञान** - रोगी से उसके सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित सूचनाओं को पूछा जाता है और उसके बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।

9) **बौद्धिक क्षमता** - इसमें रोगी की बुद्धि से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र की जाती है। इनसे सम्बन्धित प्रश्नों को पूछकर उसके बौद्धिक स्तर का पता लगाया जाता है।

10) **निर्णय क्षमता** -क्या रोगी अपनी समस्याओं को ठीक तरह से बता पाता है? क्या उसके अन्दर निर्णय लेने क्षमता है या नही। चिकित्सक उसकी सूझ एवं निर्णय क्षमता से सम्बन्धित प्रश्न करते है।

दोष

i) मानसिक स्थिति परीक्षण में रोगी जो उत्तर देता है उनकी जाँच या व्याख्या पूर्ण रूप से नहीं हो पाती है।

ii) इस तरह की असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षा में सही ऑकडें प्राप्त नहीं हो पाते है। इस कारण उनकी व्याख्या अधूरी ही रहती है।

असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षण में कुछ कमियॉ होने के कारण संरचित मानसिक स्थिति परीक्षण विकसित किये गये है। इनमें सबसे लोकप्रिय 'मिनी मेंटल स्टेट्स एक्जामिनेशन' है। इस परीक्षा में कुल 30 एकांश या पद है जिनका उत्तर देने में 10 मिनट का समय लगता है। इसके द्वारा उन्मुखता, पुनःस्मरण, लघुकालीन स्मृति, अवधान/ध्यान, भाषा बोध आदि का निरीक्षण किया जाता है। इस परीक्षा की खासियत यह है कि इसका मानक भी उपलब्ध है। जिसकी तुलना सामान्य व्यक्ति के साथ की जा सकती है। इसके आधार पर एक अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते है। इस मानसिक स्थिति परीक्षण का दोष यह है कि यह रोगी के लिखित एवं शाब्दिक अनुक्रियाओं पर अधिक बल डालता है। इसलिए इसका उपयोग उन रोगियों के लिए सही नहीं होता है, जिनको केवल एक ही भाषा का ज्ञान होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. किसी व्यक्ति या समूह के सम्बन्ध में गहन अध्ययन हेतु एक महत्वपूर्ण विधि..... है।
2. .....साक्षात्कार में प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या आदि का निरीक्षण पहले ही कर लिया जाता है।
3. .....साक्षात्कार का ही एक विशेष प्रारूप है।
4. व्यक्ति द्वारा अपने विचारो, चिन्तन एवं संवेगों का स्वयं निरीक्षण एवं रिकार्डिग .....कहलाता है।
5. रोशा स्याही धब्बा परीक्षण में कुल.....कार्ड होते है। जिसमें .....कार्ड सफेद तथा.....कार्ड रंगीन होते है|

3.7 सारांश

i) नैदानिक मूल्यांकन के अन्तर्गत विधियों का अध्ययन करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

i) नैदानिक मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया होती है। जिसमें चिकित्सक रोगी के बारे में अलग-अलग स्रोतों से आँकडे इकट्ठा करके उसके व्यवहार का अध्ययन करता है।

i) नैदानिक मूल्याँकन के अन्तर्गत निम्न प्रविधियाँ सम्मिलित है- केस अध्ययन विधि, नैदानिक साक्षात्कार, निरीक्षण विधि और मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि|

3.8 शब्दावली

1. प्रतिवेदन (रिर्पोट) - किसी भी परीक्षण विधि के सारे चरण पूर्ण हो जाने के बाद उसकी क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुति।
2. दुर्भीति (डर) -किसी निश्चित वस्तु, स्थान आदि के प्रति डर।
3. व्यामोही विचार - दूसरों के प्रति गलत विश्वास
4. मनोग्रसित विचार - किसी विचार का बार-बार मन में आना, जिस पर रोगी का नियंत्रण नहीं रहता है।

5. रक्षायुक्तियां - अपने अहम को बचाने के लिए प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न तरीके।
6. नैदानिक हस्तक्षेप - नैदानिक विधियों द्वारा किसी समस्या का उपचार करना।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जीवन इतिहास
2. मानकीकृत या संरचित
3. मानसिक स्थिति परीक्षण
4. आत्म विमर्श या आत्म सलाह
5. 10, 5, 5

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसीदास
2. असामान्य मनोविज्ञानः विषय और व्याख्या- डा0 मो0 सुलेमान, डा0 मो0 तौवाब-मोतीलाल बनारसीदास

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1) नैदानिक मूल्यांकन का क्या अर्थ है? इसके विभिन्न चरणों का उल्लेख करिये।
2) नैदानिक साक्षात्कार को परिभाषित करिये? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करिये।
3) नैदानिक साक्षात्कार के विभिन्न चरणों को समझाइये तथा इसके उद्देश्यों की व्याख्या करिये।
4) केस अध्ययन साक्षात्कार तथा मानसिक स्थिति परीक्षण के सविस्तार समझाइये।
5) केस अध्ययन विधि से क्या समझते है? इसके गुण एवं दोषों का वर्णन करिये।
6) नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण के प्रकारों को समझाइये तथा इसके गुण व दोषों की विवेचना करिये|

इकाई 4. निदान : अर्थ एवं वर्गीकरण का उद्देश्य; DSM-IV: विकृति या असामान्यता का वर्गीकरण (Diagnosis: Meaning and Purpose of Classification; DSM-IV: Classification of Abnormality)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वर्गीकरण
4.3.1 वर्गीकरण के उद्देश्य तथा लाभ
4.4 निदान एवं परिभाषायें
4.5 DSM-IV का वर्गीकरण
4.5.1 प्रथम धुरी या अक्ष
4.5.2 द्वितीय धुरी या अक्ष
4.5.3 तृतीय धुरी या अक्ष
4.5.4 चतुर्थ धुरी या अक्ष
4.5.5 पंचम धुरी या अक्ष
4.6 DSM-IV के गुण
4.7 DSM-IV की आलोचनायें
4.8 DSM-IV की आवश्यकता
4.9 निष्कर्ष
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मानसिक व्यवहारों या विकृतियों का वर्गीकरण करके अर्थात् उन्हें विभिन्न श्रेणियों में बॉटकर हम असामान्य व्यवहार के स्वरूप, कारणों तथा उपचार की एक योजना बना पाते है। इन मानसिक विकृतियों को श्रेणी या वर्ग में बॉटने की प्रविधि को निदान कहा जाता है।

असामान्य व्यवहारों या मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण का इतिहास यूनानी चिकित्सक हिप्पोकेट्स ने शुरू किया। उन्होनें इन विकृतियों को उत्साह, विषाद एवं उन्माद तीन श्रेणियों में विभाजित किया। 1856-1926 में क्रिपालिन

ने लक्षणों के आधार पर मानसिक रोगों को अलग-अलग वर्गों में बॉटा और तभी से आधुनिक वर्गीकरण तंत्र की शुरूआत हुई। 1948 में अमेरिकन मनोचिकित्सक संघ (APA) द्वारा इस वर्गीकरण की विधिवत् स्थापना की गयी। 1952 में DSM.I अर्थात् इाइग्नोस्टिक एण्ड स्टैस्टिकल्स मैनुअल ऑफ मेन्टल डिसआडर्स का प्रथम वर्गीकरण तन्त्र प्रकाशित हुआ। इसके बाद DSM.II DSM.III एवं 1994 में DSM-IV प्रकाशित हुआ। ये मानसिक रोगों के वर्गीकरण का एक नवीन एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र है। इसमें पॉच अलग-अलग धुरी या अक्ष पर मानसिक रोगों के वर्गीकरण को दिखाया गया है। 2000 में DSM-IV का नवीनतम वर्गीकरण भी प्रकाशित हो चुका है जिसे DSM-IV TR कहा जाता है।

इस इकाई के अन्तर्गत हम वर्गीकरण एवं निदान के अर्थ एवं उद्देश्यों को समझ तथा DSM-IV के वर्गीकरण का अध्ययन कर सकेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है-

i) असामान्य व्यवहारों या विकृतियों के वर्गीकरण एवं निदान के बारे में जानना।

ii) DSM-IV के अन्तर्गत मानसिक विकृतियों को किस प्रकार वर्गीकृत किया है, उसका अध्ययन करना।

4.3 वर्गीकरण

वर्गीकरण का अर्थ होता है कि असामान्य व्यवहारों को कुछ निश्चित आधारों, निश्चित प्रकारों, श्रेणियों या वर्गो में बॉट देना। इससे उनके स्वरूप को ठीक तथा स्पष्ट रूप से समझा जा सके। असामान्य व्यवहारों का वर्गीकरण मनोचिकित्सकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का एक मुख्य विषय रहा है। वर्गीकरण या श्रेणीकरण करके हम असामान्य व्यवहार या कुसमायोजी व्यवहार के स्वरूप को समझने, उसके कारणों को जानने तथा उसके उपचार के लिए योजना बना पाते है।

4.3.1 वर्गीकरण के उद्देश्य तथा लाभ

वर्गीकरण की आवश्यकता निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जरूरी होती है-

1. **निदान के लिए -** जब मानसिक विकृतियों का वर्गीकरण हो जाता है, तो उसके निदान में बहुत मदद मिलती हैं। इससे उस विकृति के लिए उपयुक्त चिकित्सा विधि के चयन में सुविधा होती है।

2. **संचार के लिये-** जब असामान्य व्यवहार का वर्गीकरण किया जाता है, तो उसका वर्ग या श्रेणी स्वयं संचारक बन जाता है। जैसे यदि असामान्य व्यक्ति को मानसिक मन्दता की श्रेणी में रखा जाता है तो वह चिकित्सक के लिए स्वयं संचारक बन जायेगा कि उस रोगी की बौद्धिक योग्यता सीमित है, स्मरण तथा चिन्तन क्षमता बहुत कम है आदि।

3. **वर्णन के लिए-** मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण से यह लाभ है कि रोगी के सम्बन्ध में एक विवरण दिया जा सकता है अर्थात् उसकी बीमारी का वर्णन किया जा सकता है जैसे - किसी मानसिक विकृति को किसी

खास वर्ग में रखने पर यह विवरण या वर्णन आसान हो जाता है कि उस रोगी का व्यवहार कैसा होगा, वह कैसा व्यवहार करेगा आदि।

4. **भविष्यवाणी के लिये-** मानसिक वर्गीकरण का उद्देश्य उस रोग या रोगी के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना है जैसे- यदि किसी मानसिक विकृति को मनोविकृति की श्रेणी या वर्ग में रखा जाता है तो इसके आधार पर आसानी से ये भविष्यवाणी की जा सकती है कि उपचार के बाद ये विकृति फिर से विकसित हो सकती है।

5. **अनुसंधान में-** वर्गीकरण में समान लक्षण वाले रोगियों को एक वर्ग में रखा जाता है, जिससे अनुसंधानकर्ताओं को सुविधा प्राप्त होती है। वह जान सकते है कि इन सबमें उभयनिष्ठ चीज क्या है? इसके आधार पर अनुसंधान में मदद मिल सकती है।

4.4 निदान

जब मानसिक विकारों का वर्गीकरण विभिन्न श्रेणियों में किया जाता है तो व्यवहारपरक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार इस श्रेणीकरण को ही निदान कहते है। निदान श्रेणीकरण की एक प्रविधि है। जब निदान मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाता है तो इसे मनोनिदान कहते है।

परिभाषायें -

कोलमैन के अनुसार **''निदान का अर्थ किसी रोग विशेष का लेबल लगाना मात्र नहीं है, बल्कि रोग विशेष के लक्षणों की पूरी जानकारी प्राप्त करना है तथा रोग के बढ़ने में उसके जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारकों का मूल्यांकन करके उसका उपचार करना है।**''

सैलिगमैन एवं रोजेनहान (1998) के अनुसार **''व्यवहार परक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार मनोवैज्ञानिक विकृतियों के श्रेणीकरण को निदान कहते है।**''।

4.5 DSM IV का वर्गीकरण

DSM IV का प्रकाशन 1994 में हुआ। ये मानसिक रोगों के वर्गीकरण का एक नवीन एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र है। इसमें मानसिक रोगों को वर्गीकृत करने के लिए एक बहुआयामीय वर्गीकरण तंत्र का उपयोग किया गया है।

इस तंत्र में व्यक्ति को पाँच अलग-अलग विमाओं (9 axis) पर रेट किया जाता है। इसमें 2 विमाओं में मानसिक रोगों के वर्गीकरण को दर्शाया गया है तथा अन्य तीन विमाओ axis (III,IV,V) में कई अन्य तरह की अतिरिक्त संगत सूचनाओं को इक्ठ्ठा करने की कोशिश की जाती है।

इस तंत्र के द्वारा ये पता चलता है कि मानसिक रोगो को समझने के लिए उस रोग के लक्षण के अलावा अन्य सूचनाओं के पूरे मूल्यांकन में महत्व देना चाहिए।

DSM IV का वर्गीकरण

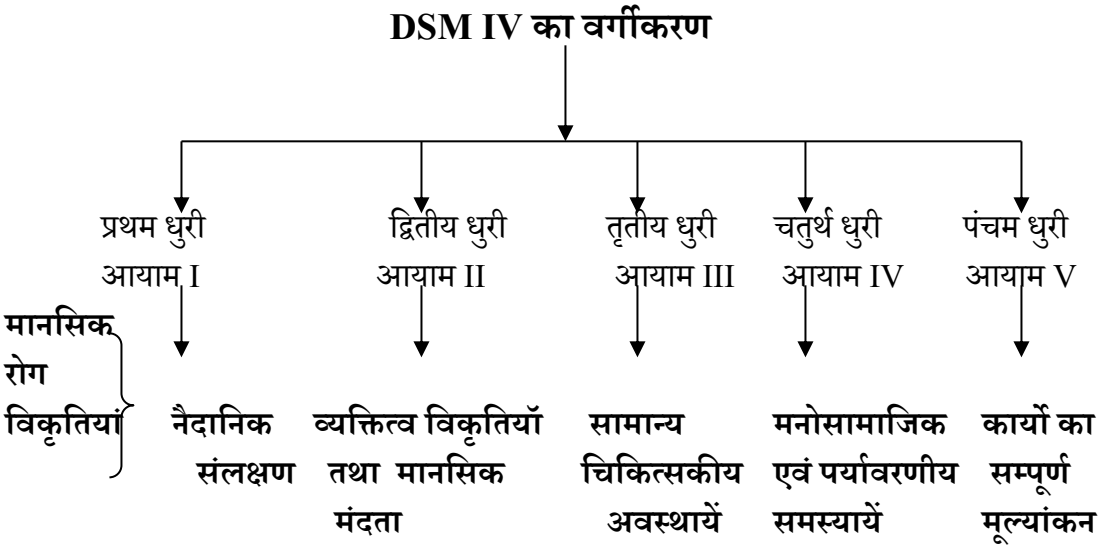

अब हम मानसिक विकारों के नवीनतम वर्गीकरण DSM. IV के अन्तर्गत आने वाले पॉच अक्षों या आयामों का वर्णन करेंगें।

प्रथम धुरी (AXIS-I) या आयाम मे व्यक्तित्व विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलता को छोड़ कर अन्य सभी मानसिक रोगों को रखा गया है।

द्वितीय धुरी (AXIS-II) या आयाम में व्यक्तित्व विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलता के रोगियों का वर्णन है। इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय अक्ष असामान्य व्यवहार का वर्गीकरण प्रस्तुत करते है। शेष तीन अक्षो (धुरियों) के रोगी के लक्षणों के अतिरिक्त अन्य पक्षों के महत्त्व को समझने के लिए रखा गया है।

तृतीय धुरी (AXIS-III) या आयाम रोगी की सामान्य चिकित्सीय दशा से सम्बन्धित है जो उसके मानसिक रोग से जुड़ी हुई हो सकती है। उदाहरणार्थ, रोगी को पहले कभी दिल का दौरा पड़ा हो इत्यादि।

चतुर्थ धुरी (AXIS-IV) या आयाम में रोगी की मनो-सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी समस्याओं का वर्णन है, जैसे निवास की समस्या, कोई दुःखद या अनचाही घटना, पारिवारिक तनाव इत्यादि। अनेक रोगियों में रोग के कारण समायोजन की कमी से सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो सकती है।

पंचम धुरी (AXIS-V) या आयाम में व्यक्ति के क्रिया-कलापों का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, व्यावसायिक आधार पर समग्र मूल्यांकन किया जाता है। इसे GAF कहा जाता है, अर्थात **Global Assessment of Functioning**। इसके द्वारा मूल्यांकन 1 से 100 अंको के मध्य रेटिंग के रूप में होता है। कम रेटिंग गम्भीर असामान्यता को व्यक्त करती है, जैसे-जैसे अंक बढ़ते है, यह व्यक्ति की उच्च स्तरीय समायोजनशीलता को व्यक्त करते है। उदाहरण - यदि रोगी के 8 अंक आते है तो वह बार-बार आत्महत्या का प्रयास कर सकता है तथा

आक्रामक व्यवहार दिखा सकता है और यदि वह 90 से ऊपर अंक प्राप्त करता है तो वह मानसिक रूप से स्वस्थ होगा।

इस प्रकार DSM. IV में प्रत्येक रोगी को इन सभी पाँचों आयामों से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की जाती है। अब हम प्रत्येक अक्ष (धुरी-AXIS) के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगें।

4.5.1 प्रथम धुरी या अक्ष (AXIS-I) आयाम-

व्यक्तित्व विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलता को छोड़कर बचे हुये समस्त असामान्य व्यवहारों को प्रथम धुरी या अक्ष में वर्गीकृत किया गया है। मुख्य प्रकार निम्नवत है -

i) शैशवकाल, बचपन अथवा किशोरावस्था की प्रथम बार निदान की गई विकृतियाँ मानसिक दुर्बलता को छोड़कर (जिसे अक्ष. IV में रखा गया है) शैशव, बचपन तथा किशोरावस्था के मानसिक विकार इस श्रेणी में आते है। इसके अन्तर्गत सीखने सम्बन्धी विकृतियाँ जैसे पढ़ने/गणित/लिखने आदि के दोष, गति सम्बन्धी दक्षता की विकृतियाँ जैसे गति सम्बन्धी समायोजन की विकृतियॉ, ध्यान न लगना, भोजन खिलाने अथवा खाना खाने सम्बन्धी शैशवकालीन व बचपन की विकृतियॉ, विभिन्न प्रकार के टिक्स (tics) भाषा द्वारा सम्प्रेषण की विकृतियॉ, मल-मूत्र त्याग सम्बन्धी दोष तथा शैशवकालीन व बाल्यकाल की अन्य विकृतियाँ, मूकता इत्यादि।

ii) प्रलाप व मूर्च्छा, चित्त विक्षेप, स्म्रति ह्रास तथा अन्य संज्ञानीय विकृतियाँ ,साधारण चिकित्सीय दशा, मादक द्रव्यों के सेवन अथवा मादक द्रव्य न मिलने से उत्पन्न मूर्च्छा, स्मृति ह्रास की स्थितियाँ।

iii) मादक पदार्थो के सेवन सम्बन्धी विकृतियाँ . शराब, कोकीन, एम्फीटामिन, कैफीन, भांग, अफीम, गांजा, चरस, धतूरे आदि पदार्थो में से एक या अधिक के सेवन से व्यक्ति की दैहिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक दशाओं में अनुपयुक्त दोषपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है।

(iv) साधारण चिकित्सीय दशा से उत्पन्न मानसिक विकृतियाँ . किसी विशिष्ट चिकित्सीय दशा के कारण उत्पन्न मानसिक विकार इस वर्ग के अन्तर्गत आते है।

(v) मनोविदलता एवं अन्य मनोविकृतियाँ - इसके अन्तर्गत मनोविदलता, व्यामोह, सूक्ष्म मनोविक्षिप्तता तथा साधारण चिकित्सीय दशाओं एवं मादक द्रव्यों से उत्पन्न मनोविकार आते है।

इन रोगियों में वास्तविकता को परखने तर्क, पूर्ण चिन्तन-बोलने एवं व्यवहार करने, सहजता आदि क्षमताओं में गम्भीर विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है।

मनोविकृति एक क्रियागत अथवा गैर-आंगिक विकृति है, जिसमें रोगी का सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। मनोविदलता या सीजोफ्रेनिया इसका मुख्य प्रकार है, ये एक गम्भीर मानसिक विकृति है, जिसमें प्रतिगमन मनोरचना की प्रधानता होती है। रोगी का सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। मनोविदलता के कई प्रकार है- जैसे - स्थिर व्यामोह मनोविदलता, हेबीफ्रेनिक आदि। मनोविकृति का दूसरा प्रकार व्यामोह या पैरानायड है। इसमें कई प्रकार के व्यामोह विकसित हो जाते है। जैसे - लैंगिक व्यामोह, धार्मिक व्यामोह आदि।

ये व्यामोह रोगी के भीतर व्यवस्थित रूप में होते है जिसके आधार पर रोगी का निदान संभव होता है। इसमें रोगी की बौद्धिक क्षमता में कमी नहीं आती और वह सामान्य व्यक्ति की तरह दिखाई देता है।

(vi) भावात्मक विकृतियाँ (मनःस्थिति विकृतियाँ)- इसके अन्तर्गत विषाद के रोगी, उत्साह के रोगी, उत्साह-विषाद दोनों के बारी-बारी से उपस्थित होने वाले रोगी तथा साधारण चिकित्सीय दशाओं एवं मादक द्रव्यों से उत्पन्न भावात्मक रोगी आते है। मनोविकृति का तीसरा मुख्य प्रकार द्विध्रुवीय विकृति है। इसमें रोगी की मनोदशा अत्यधिक सुखद से अत्यधिक दुखद के बीच बदलती रहती है। उत्साह अवस्था में उसकी मनोगतिक क्रियाये बढ जाती है। जैसे -आशावादी विचार, उत्तेजना आदि जबकि विषाद अवस्था में वह निष्क्रिय तथा निराशावादी हो जाता है।

(vii) चिन्ता विकृतियाँ - असंगत भय, मनोग्रस्तता-बाध्यता विकृति, सामान्यीकृत चिन्ता विकार, किसी साधारण चिकित्सीय दशा से उत्पन्न चिन्ता विकृति, मादक पदार्थो के सेवन से उत्पन्न चिन्ता-विकार से सम्बन्धित रोगी इसके अन्तर्गत आते है। दुर्भीति या फोबिया एक मानसिक रोग है। यह एक प्रकार की चिन्ता विकृति है इसमें किसी वस्तु या परिस्थिति के प्रति रोगी को अत्यधिक भय उत्पन्न हो जाता है, जो कि वास्तव में खतरनाक नहीं होता है। चिन्ता विकृति का दूसरा महत्वपूर्ण प्रकार मनोग्रसित-बाध्यता है। मनोग्रस्ति एक मानसिक क्रिया या विचार है, जो रोगी की इच्छा के विरूद्ध आता है, ये विचार अतार्किक होता है और उस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं होता है। बाध्यता का अर्थ है कि किसी क्रिया को बार-बार करने के लिए बाध्य (मजबूर) होना। यह क्रिया भी अतार्किक होती है और रोगी के नियंत्रण में नहीं होती।

जैसे- बार-बार हाथ धोना, बार-बार बन्द ताले को देखना आदि। सामान्यीकृत चिन्ता विकार से सम्बन्धित रोगियों में चिन्ता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके लिये किसी उत्तेजना परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती है।

(viii) शारीरिक लक्षणों से युक्त विकृतियाँ -इन रोगियों में शारीरिक लक्षण तो विद्यमान रहते हैं किन्तु उनका कारण दैहिक नहीं होता। इस रोग में व्यक्ति शारीरिक लक्षणों या समस्याओं की शिकायत करता है, परन्तु वास्तव में उसका कोई दैहिक आधार नहीं होता है। जैसे - रोगी में अंधेपन की शिकायत होने पर उसकी आँखों में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है। इन शारीरिक लक्षणों के विकसित होने में मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों का हाथ होता है।

(ix) कृत्रिम विकृतियाँ -शारीरिक अथवा व्यवहार जनित लक्षण रोगी अपनी इच्छा से उत्पन्न करता है जिसे एक बेचारा रोगी व्यक्ति समझा जाता है, वह प्रायः सफेद झूठ बोलता है। इस श्रेणी में उन रोगियों को रखा जाता है जो जानबूझकर असामान्य दैहिक या मनोवैज्ञानिक लक्षण अन्य लोगों को दिखाते है, ताकि लोग उन्हें बीमार समझ कर उन पर ध्यान दें।

x) वियोजनात्मक विकृतियाँ -इसके अन्तर्गत वियोजनात्मक स्मृति ह्रास विकृति, फ्यूगए वियोजनात्मक बहु-व्यक्तित्व, डिपर्सोनलाइजेशन विकृति आदि आते है। इन रोगियों में चेतना, स्मृति अथवा व्यक्तित्व अस्थायी रूप से परिवर्तित हो जाता है। इनमें स्मरण का ह्रास, चेतना का ह्रास, स्वयं की पहचान को भूल जाना, घर से दूर भाग कर चला जाना और अपनी पूर्व पहचान भूल जाना, एक ही व्यक्ति का दो या तीन या अधिक व्यक्तित्वों में बदल जाना और एक व्यक्तित्व को दूसरे की चेतना का बिलकुल न होना आदि लक्षण आते है।

(xi) कामजनित एवं लैंगिक विकृतियाँ - इसके अन्तर्गत सेक्स से सम्बन्धित अनेक विकृतियाँ जैसे सेक्स की अत्यधिक इच्छा, सेक्स की इच्छा न रखना, सेक्स से दूर भागना या डरना, स्वयं को सेक्स के लिए सक्षम न समझना, शीघ्र पतन हो जाना, सेक्स के प्रति ग्लानि व घृणा रखना इत्यादि लक्षण विद्यमान रहते है। इसके अतिरिक्त बच्चों

के साथ मैथुल, जननेन्द्रियों के अतिरिक्त शरीर के अन्य अंग से सेक्स इच्छाओं को पूरा करना (जूता, बाल, रूमाल, इत्र, वस्त्र, अथवा शरीर के अंग पैर आदि) जननेन्द्रियों को विपरीत लिंग के लोगों या बच्चों को प्रदर्शित करना, परपीड़न में काम-तृप्ति, स्वपीड़न के रूप में कामतृप्ति, शव-प्रेम, पशु मैथुन, नपुंसकता, बलात्कार, सगे लोगो के साथ संभोग (भाई-बहिन, पिता-पुत्री)ए तांक झाँक करके कामतृप्ति, समलैंगिकता तथा विपरीत लिंग के व्यक्ति के समान वस्त्र धारण करना आदि भी सेक्सुअल विकृतियों के रूप में है।

(xii) भोजन सम्बन्धी विकृतियाँ -इसके अन्तर्गत खाने की आदत से सम्बन्धित विकृतियों को रखा गया है, भूख का मर जाना या विशेष प्रकार के भोजन का त्याग अर्थात् एनोराक्सिया नरवोसा अर्थात् बुल्मिया नरवोसा इसके प्रमुख प्रकार है।

(xiii) निद्रा जनित विकृतियाँ -अनिद्रा, सोते समय श्वास का रूकना, सोने व जागने के क्रम में व्यवधान, भयावह स्वप्नों से नींद भंग होना, निद्रा विचरण अर्थात् नींद में चलना, अन्य मानसिक रोग के कारण नींद सम्बन्धी विकार, साधारण चिकित्सीय दशा तथा मादक द्रव्यों के सेवन से नींद सम्बन्धी विकार इसके अन्तर्गत आते है।

(xiv) आवेग नियंत्रण विकृतियाँ -इन मानसिक विकारों में रोगी का अपने आवेगों पर नियंत्रण नहीं रहता है। इस विकृतियों के अन्तर्गत बीच-बीच में अत्यधिक उत्तेजित हो जाना, चोरी का बाध्यात्मक व्यवहार (क्लिप्टोमेनिया),आग लगाना (पायरोमेनिया), बाध्यात्मक रूप से जुआ खेलना आदि आवेगों पर नियंत्रण न रख सकने के कारण उत्पन्न विकार सम्मिलित है।

(xv) समायोजनात्क विकृतियाँ - इन विकृतियों में रोगी किसी भी क्षेत्र में पर्याप्त समायोजन नहीं कर पाता है। समायोजनात्मक विकृति चिन्ता, विषादात्मक मूड, आचरण की विकृति, संवेग व आचरण दोनो के साथ इन रोगियों में पाई जा सकती है।

(xvi) अन्य दशायें जो नैदानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हों -इस श्रेणी में वे सभी अवस्थायें आती है जिन्हें मानसिक रोग की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता है परन्तु फिर भी वे व्यक्ति के लिए समस्या उत्पन्न करती है जैसे नौकरी छूट जाना, शैक्षिक व्यवसायिक समस्यायें आदि।

4.5.2 द्वितीय धुरी या अक्ष (Axis-II)

DSM-IV में इस वर्ग के अन्तर्गत व्यक्तित्व विकृतियो तथा मानसिक दुर्बलता को सम्मिलित किया गया है। ये दशायें बाल्यावस्था अथवा किशोरावस्था में उत्पन्न हो सकती है और प्रौढ़ जीवन में भी बनी रह सकती है। मानसिक रोगों के वर्गीकरण में व्यक्तित्व विकृतियों का रखना महत्वपूर्ण माना गया है।

(i) व्यक्तित्व विकृतियाँ - व्यक्तित्व विकृतियाँ एक प्रकार की मानसिक विकृतियाँ होती है, परन्तु इनमें अन्य विकृतियों से कम विचलन होता है। इसमें व्यक्ति के शीलगुण इस हद तक असमायोजित हो जाते है, जिसके कारण उसका सामाजिक तथा व्यवसायिक व्यवहार गड़बड़ हो जाते है अर्थात् इस तरह के विचार उसके मन में आते है जो उसके समायोजन में बाधा डालते है, जिसके कारण आपसी सम्बन्ध भी खराब हो जाते है। इसके अन्तर्गत असामाजिक व्यक्तित्व, मनोग्रस्ति-बाध्यता व्यक्तित्व, पराश्रित व्यक्तित्व विकृति आदि आते है।

(ii).मानसिक मन्दता या मानसिक दुर्बलता - इसके अन्तर्गत वे व्यक्ति रखे जाते है जिनकी बुद्धि लब्धि सामान्य से कम होती है। ऐसे रोगी समाज में एक सामान्य व्यक्ति की तरह से जीवन-यापन नहीं कर पाते है। इस विकृति के निम्न कारण हो सकते है।

1. वंशानुगत प्रभाव से
2. जन्म से पूर्व या जन्म के समय या 18 वर्ष से पहले मानसिक विकास रूक जाना

मानसिक मन्दता में व्यक्ति की बुद्धिलब्धि 70 से कम होती है। उसके दैनिक कार्य बाधित हो जाते है आदि। इन रोग में समायोजन हीनता के कारण अन्य रोगों की तरह चिन्ता, संवेगात्मक असंतुलन या व्यक्तित्व विघटन नहीं होता है। इनमें बुद्धि का सीमित तथा अपर्याप्त विकास होता है। मात्रात्मक स्तर पर मानसिक मन्दता के निम्नलिखित प्रकार है-

a) **जड़ -** जिसकी बुद्धि लब्धि 25 से भी कम होती है।
b) **मूढ़ -** जिसकी बुद्धि लब्धि 25 से 50 के बीच होती है।
c) **मूर्ख -** जिसकी बुद्धि लब्धि 51 से 70 के बीच होती है।

4.5.3 तृतीय धुरी या अक्ष (Axis-III)-

वर्गीकरण के इस भाग में सामान्य चिकित्सीय दशाओं का वर्णन किया जाता है। मानसिक रोगी यदि पहले कभी किसी शारीरिक रोग से पीड़ित रहा है उसका विवरण दिया जाता है। जैसे-क्या वह तपेदिक, हृदय रोग, डाइबिटीज या अन्य रोगों से ग्रस्त रहा है। वर्तमान में उसे कौन-सी शारीरिक बीमारी आदि। इन बीमारियों के कारण उसे क्या-क्या समस्यायें महसूस होती है आदि।

4.5.4 चतुर्थ धुरी या अक्ष (Axis-IV)-

वर्गीकरण के इस आयाम में रोगी की मनो-सामाजिक तथा पर्यावरण जनित समस्याओं का विवरण निहित है। इससे रोगी के निदान तथा उपचार में सहायता मिलती है। इससे सम्बन्धित निम्नलिखित समस्यायें है-

a) माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्य से सम्बन्धित समस्यायें
b) सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित समस्यायें
c) शैक्षिक समस्यायें
d) व्यवसाय से सम्बन्धित समस्यायें
e) निवास की समस्या
f) स्वास्थ्य-सेवाओं की उपलब्धि की समस्या
g) कानून/अपराध से सम्बन्धित समस्या
h) अन्य मनो-सामाजिक एवं वातावरण सम्बन्धित समस्यायें

4.5.5 पंचम धुरी या अक्ष (Axis-v)-

इसमें व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक सामाजिक तथा व्यावसायिक क्रिया-कलाप के आधार पर उसका समग्र मूल्यांकन किया जाता है। इसमें शारीरिक या वातावरण जनित कारणों से उत्पन्न अवरोधों को नहीं रखा गया है। कार्य-कलापों का समय मूल्यांकन एक स्केल पर किया जाता है जिसे GAF Scale कहा जाता है। इस पैमाने पर प्राप्त विभिन्न अंकों का मूल्यांकन नीचे बनी मापनी द्वारा दिखाया गया है।

समग्र निर्धारण की क्रियात्मक मापनी

GLOBAL ASSESSMENT OF FUNCTIONING SCALE (GAF SCALE),

100 | 91	प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित समायेाजित क्रियायें अधिक मात्रा में विद्यमान, मानसिक रोग का कोई लक्षण नहीं, मानसिक दृष्टि से अत्यन्त स्वस्थ व्यक्तित्व
90 | 81	मानसिक रोग का कोई लक्षण नहीं या हल्का लक्षण जैसे परीक्षा के समय हल्की चिन्ता, छोटी-मोटी खटपट के अलावा सामाजिक सम्बन्ध प्रेमपूर्वक
80 | 71	यदि कोई लक्षण है तो अस्थायी तौर पर ही, सामाजिक, व्यवसायिक तथ स्कूल से सम्बन्धित केवल छोटी-मोटी समस्यायें है।
70 | 61	कुछ हल्के लक्षण जैसे थोड़ा विषाद या नींद में कमी, सामाजिक, व्यवसायिक अथवा स्कूल से सम्बन्धित कुछ कठिनाइयों का होनाय क्रिया-कलाप अर्थपूर्ण तथा सामाजिक सम्पर्क भी ठीक-ठाक
60 | 51	मध्यम स्तरीय लक्षणय आपसी सम्बन्धों में कुछ अधिक कठिनाइयों की उपस्थिति

50 | 41	गम्भीर लक्षण जैसे आत्महत्या के विचार, अनचाही क्रियाओं की बाध्यता, सामाजिक, व्यवसायिक, स्कूल की गम्भीर समस्याये जैसे-मित्र न होना, किसी व्यवसाय को बनाये रखने में अक्षम
40 | 31	वास्तविकता के परखने में कुछ कमी, बातचीत में स्पष्टता व संगति की कमी, मित्रों से दूर भागना, परिवार को अनदेखा करना, विषाद की अधिकता, परिवार व स्कूल से दूर भागना इत्यादि
300 | 21	व्यामोह की उपस्थिति, निर्णय का अभाव, दिन भर लेटा रहना, कोई काम न करना, आत्महत्या का विचार
20 | 11	स्वयं व दूसरों को चोट पहुंचाना, आत्महत्या के प्रयत्न करना, शारीरिक स्वच्छता पर ध्यान न देना, बातचीत अस्पष्ट व मूकता की दशा, आक्रामक व्यवहार, अत्यधिक उत्तेजनापूर्ण उत्साह प्रदर्शन
10 | 1	स्वयं व दूसरे को चोट पहुँचाने का निरन्तर प्रयास, अत्यन्त आक्रामक व्यवहार स्वयं को स्वच्छ रखने में असमर्थ, आत्महत्या का निरन्तर प्रयत्न और मृत्यु की संभावना

1) GAF Scale पर कम अंक गम्भीर असामान्यता के द्योतक है। जैसे-जैसे अधिक अंक मिलते जाते है, समायोजनशीलता बढ़ती जाती है। इस प्रकार 91-100 अंक प्राप्त व्यक्ति सर्वाधिक समायोजित स्वस्थ प्रभावकारी तथा और 1-10 तक अंक पाने वाला व्यक्ति सर्वाधिक मानसिक रोगों से ग्रस्त होगा।

4.6 DSM -IV के गुण

1. DSM दृIV के पॉचों आयाम या अक्ष अधिक विशिष्ट, विस्तृत एवं वैज्ञानिक आंकड़ों पर आधारित है।
2. इसमें लगभग 300 मानसिक विकृतियों का वर्णन है जो अपने आपमें एक उच्च रिकॉर्ड है।
3. इसमें प्रत्येक मानसिक विकृति के निदान के लिए कुछ स्पष्ट कसौटी बनी है।
4. इसमें प्रत्येक विकृति की नैदानिक विशेषताओं का उल्लेख है तथा इसमें विशिष्ट आयु, संस्कृति, प्रचलन, जटिलतायें एवं पारिवारिक पैटर्न आदि का भी उल्लेख किया गया है।

5. इसमें विभिन्न मानसिक विकृतियों का वर्गीकरण बहुत गहनता से किया गया है।

4.7 DSM-IV की आलोचनायें -

1. DSM दृIV में वर्गीकरण की जितनी श्रेणियॉ है उनके द्वारा मानसिक रोगों का वर्णन होता है, उनकी व्याख्या नही होती है।
2. इसमें केवल व्यक्तिगत व्यवहार का लेखा जोखा दिखाया जाता है।
3. इसमें बाल्यावस्था की बहुत सारी समस्याओं को मनोचिकित्सकीय विकृति में लाने का प्रयास किया गया है परन्तु उसका कोई उपयुक्त कारण नही बतलाया गया है।

DSM -IV की आवश्यकता

WHO ने 1993 में ICD-10 को प्रकाशित किया, जिसमें स्पष्ट वर्गीकरण नहीं हो सका अतः DSM IV की आवश्यकता हुई।

1) निदान कार्य के आनुभाविक आधार को बढ़ाने के विचार से DSM IV का निर्माण आवश्यक हो गया।
2) DSM III तथा DSM II R में मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण में अक्ष II, अक्ष IV तथा अक्ष V में मापनी सम्बन्धी त्रुटि के कारण DSM IV का निर्माण किया गया।

4.8 निष्कर्ष:-

DSM-IV में विभिन्न मानसिक रोगियों का वर्गीकरण बहुत गहनता से किया गया है। कई बार मनोचिकित्सक इतना सूक्ष्म वर्गीकरण करने में कठिनाई का अनुभव करते है। इस दिशा में और अधिक चिन्तन एवं अनुसन्धान की आवश्यकता है। DSM-IV पर एक आरोप यह है कि यह व्यक्ति की मानसिक दशा का विवरण समय के एक विशेष बिन्दु के लिये देता है, तथा उसके पूर्ण इतिहास पर बल नहीं देता है, जोकि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। DSM-IV में रोग के कारण पक्ष पर विशेष ध्यान व महत्त्व नही दिया गया है।

इन अभावों के बावजूद DSM-IV में व्यक्ति के बहुआयामी या धुरीय विशलेषण पर जोर देना इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है। इससे असामान्य व्यवहार को समझने तथा रोगी के उचित मूल्यांकन की सम्भावनायें निहित है। DSM-IV से DSM.प्प्प् की तुलना में अधिक स्पष्ट तथा विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। DSM-IV की विश्वसनीयता भी अधिक है। ये तो आने वाला भविष्य ही बता पायेगा कि DSM-IV के आधार पर असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में जानकारी, असामान्यता की रोकथाम तथा उपचार हेतु किस सीमा तक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। वास्तव में मानव मनोविज्ञान और विशेषकर असामान्य व्यवहार इतना जटिल, सूक्ष्म तथा गहन है कि इसको समझने हेतु लगातार प्रयास जरूरी है।

अभ्यास प्रश्न

1. समग्र मूल्यांकन मापनी द्वारा व्यक्ति के क्रिया-कलापो का मूल्यांकन …….. द्वारा किया जाता है।
2. DSM-IV में मानसिक विकारों …… अक्षो या धुरी में विभाजित किया है।
3. तृतीय धुरी या अक्ष के अन्तर्गत …….. समस्यायें आती है।
4. क्लिप्टोमेनिया को ……. विकृतियो के अन्तर्गत रखा गया है |
5. मानसिक मन्दता के निम्नतम स्तर, जिसे जड़ कहा जाता है। इसकी बुद्धि लब्धि ……. होती है

4.10 सारांश

a) असामान्य व्यवहार या मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण का तात्पर्य इसके भिन्न-भिन्न वर्गो या प्रकारों से है।

b) व्यवहारपरक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार मनोवैज्ञानिक विकृतियों के वर्गीकरण को निदान कहते है।

c) वर्गीकरण के कई उद्देश्य है -1. निदान के लिए 2. संचार के लिए 3. वर्णन के लिए 4. भविष्यवाणी के लिए 5. अनुसंधान के लिए

d) DSM-IV मानसिक विकारों के वर्गीकरण का तंत्र है जिसमें इन विकृतियों को लक्षणों के आधार पर 5 अलग-अलग धुरियों या अक्ष या आयाम पर रखा गया है।

e) इसमें प्रथम व द्वितीय धुरी में विभिन्न मानसिक रोगों को वर्गीकृत किया है। तृतीय, चतुर्थ व पंचम धुरी में रोगी का चिकित्सकीय आधार, मनोसामाजिक व पर्यावरण आधार तथा मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा व्यवसायिक क्रिया कलापों के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

4.11 शब्दावली

DSM-IV TR Diagnostic & Statistical Manual of Mental Disorder Text Revision
प्रतिगमन - एक रक्षायुक्ति या अहं प्रतिरक्षा रचना होती है। इसमें व्यक्ति जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु या तनावपूर्ण परिस्थितियों से बचने के लिए बचपन की ओर लौटने की प्रवृत्ति रखता है।

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अंको
2. पाँच
3. सामान्य चिकित्सकीय अवस्थायें
4. आवेश नियंत्रण विकृतियाँ
5. 25 से कम

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास
2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है? इन विकृतियों को किस-किस आधार पर वर्गीकृत किया जाता है?

2. निदान को परिभाषित करिये। निदान की आवश्यकता एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

3. DSM-IV के वर्गीकरण तंत्र की विशेषतायें बताइये। इसमें विभिन्न मानसिक विकृतियों को किस तरह वर्गीकृत किया गया है, समझाइये|

इकाई 5. मनोचिकित्सा: अर्थ एवं प्रकृति, हस्तक्षेप के मॉडल एवं मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychotherapy: Meaning and Nature, Models of Intervention and Psychoanalytic Therapy)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मनोचिकित्सा या मनोपचार
5.3.1 मनोचिकित्सा अर्थ एवं प्रकृति
5.3.2 मनोचिकित्सा का स्वरूप
5.3.3 मनोचिकित्सा के उद्देश्य
5.4 नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल
5.4.1 नैदानिक हस्तक्षेप माँडल के उद्देश्य
5.4.2 नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडल
5.4.2.1 मनोगत्यात्मक मॉडल
5.4.2.2 व्यवहारात्मक मॉडल
5.4.2.3 परिघटनात्मक माँडल
5.4.2.4 अन्तवैयक्तिक माँडल
5.5 मनोविश्लेषणवादी या मनोगत्यात्मक चिकित्सा
5.5.1 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के उद्देश्य
5.5.2 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के चरण
5.5.3 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के गुण व दोष
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मनोचिकित्सा का उद्देश्य व्यक्तित्व समायोजन प्राप्त करने में रोगी की सहायता करना है। इसमें मनोवैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा व्यक्ति की मानसिक समस्याओं एवं विकृतियों में चिकित्सक तथा रोगी के बीच पारस्परिक क्रिया आयोजित की जाती है जिसमें रोगी अपने विचारों व भावों को व्यक्त करता है। मनोचिकित्सा के अन्तर्गत

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा आती है जिसमें अचेतन मन की दबी इच्छाओं एवं उलझनों को सुलझाकर उनका उपचार किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में नैदानिक माँडलों का अत्यन्त महत्व है। ये एक ऐसा ढॉचा होता है, जिसमें मानव व्यवहार की व्याख्या अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न ढंग से की जाती है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है-

1. मनोचिकित्सा एवं मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ, स्वरूप एवं उद्देश्यों का अध्ययन करना।
2. नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख माँडलों का अध्ययन करना ।

5.3 मनश्चिकित्सा या मनोपचार

मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करने को मनश्चिकित्सा कहा जाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी व्यवसायी या पेशेवर क्षमता का उपयोग करते है और मानसिक या सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति के व्यवहार को बदलने की कोशिश करते है। मनश्चिकित्सा का उपयोग उन मानसिक रोगियों के लिए लाभकारी होता है जो मनः स्नायुविकृति से पीड़ित होते है। इसका उपयोग मनोविक्षिप्ति या मनोविकृति के रोगियों के साथ भी किया जाता है परन्तु ऐसे रोगियों को इसके साथ-साथ औषधि देना भी जरूरी होता है।

रौटर ,(1976) के अनुसार, **''मनश्चिकित्सा मनोवैज्ञानिक की एक सुनियोजित क्रिया होती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की जिन्दगी में ऐसा परिवर्तन लाना होता है जो उसकी जिन्दगी को भीतर से अधिक खुश तथा अधिक संरचनात्मक या दोनों ही बनाता है।**

5.3.1 अर्थ एवं प्रकृति

निटजील, वर्नस्टीन एवं मिलिक (1991) के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा में कम-से-कम दो व्यक्ति होते है जिसमें एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निबटने की विशेष योग्यता एवं प्रशिक्षण प्राप्त होता है और दूसरा समायोजन मे समस्या का अनुभव करता है और वे दोनों इस समस्या को कम करने के लिए एक विशेष संबंध कायम करने की कोशिश करते है। इस संबंध के अर्न्तगत कई मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है तथा रोगी के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है।''

मनश्चिकित्सा में रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं को अभिव्यक्त करता है। चिकित्सक द्वारा उसे विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं सलाह दिया जाता है ताकि उसका आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान कायम रह सके। धीरे-धीरे जिससे रोगी की समस्याएँ समाप्त होते चली जाती है और उसमें ठीक ढंग से समायोजन करने की क्षमता फिर से विकसित हो जाती है।

5.3.2 मनोपचार का स्वरूप

मनोपचार या मनश्चिकित्सा या नैदानिक हस्तक्षेप के मुख्य निम्नलिखित तीन भाग है-

1. सहभागी - मनश्चिकित्सा में दो सहभागी होते है. पहला सहभागी क्लायंट या रोगी होता है। **क्लायंट** वह व्यक्ति होता है जिसमें सांवेगिक या मानसिक अस्थिरता इतनी अधिक बढ जाती है कि उसे अपनी समस्याओ के समाधान के लिये चिकित्सक की मदद लेनी पडती है। मनश्चिकित्सा का दूसरा सहभागी **चिकित्सक होता** है। चिकित्सक वह व्यक्ति होता है जो क्लायंट या रोगी को उसकी समस्याओं से निबटने में मदद करता हो।

चिकित्सक के लिए निम्नलिखित व्यवसायिक गुण होने चाहिए|

1.वह प्रशिक्षित हो, वह क्लायंट की समस्याओं को समझ सके और उसके साथ ठीक ढंग से अन्तःक्रिया कर सके। उसमें क्लायंट की समस्याओं को ठीक ढंग से सुनने, समझने तथा संवेदनशीलता का भाव दिखाने की क्षमता होनी चाहिए।

2.चिकित्सीय संबंध -चिकित्सक तथा क्लायंट के बीच विशेष संबंध होता है, जिसे चिकित्सीय संबंध कहा जाता है। कोरचिन के अनुसार चिकित्सीय संबंध में आसक्ति (लगाव) तथा अनासक्तिक (अलगाव) का संतुलन होना चाहिए। एक उत्तम चिकित्सीय संबंध में निम्नलिखित गुण होने चाहिये-

1. चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही चिकित्सा को सफल बनाने में व्यक्तिगत प्रयास करना चाहिये।
2. चिकित्सा के दौरान चिकित्सक तथा रोगी दोनो को ही समान दृष्टिकोण रखना चाहिये।
3. चिकित्सक तथा रोगी को एक-दूसरे की भलाई के लिए ध्यान देना चाहिये।

3.मनश्चिकित्सा की प्रविधि -मनोपचार या मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ इस प्रकार है-

a) सूझ उत्पन्न करना - इस प्रविधि में रोगी में आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-ज्ञान विकसित करने की कोशिश की जाती है। इसमें चिकित्सक रोगी को ये समझाता है कि वे क्यों इस तरह का व्यवहार करते है। यदि वे ऐसा समझ जाते हैं तो इससे नये व्यवहार की उत्पत्ति उसमें होती है जिसे सूझ कहा जाता है।

b) **सांवेगिक अशांति को कम करना -** मनश्चिकित्सा में रोगी के सांवेगिक अशांति की बहुत कम कर दिया जाता है ताकि वह चिकित्सा में आगे ठीक ढंग से सहयोग कर सके तथा अपने व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करें। जब रोगी यह समझता है कि चिकित्सक उसका एक व्यक्तिगत दोस्त है जिस पर भरोसा किया जा सकता है, तो उसमें स्वयं ही सांवेगिक स्थिरता उत्पन्न होती है।

c) विरेचन को प्रोत्साहित करना -चिकित्सक की उपस्थिति में रोगी को उसके संवेगों, भावों आदि को खुलकर व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। इस प्रक्रिया को विरेचन कहा जाता है। इस तरह से विरेचन की प्रक्रिया द्वारा कुछ वैसे दबे हुए संवेग की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं रोगी बहुत समय पहले से नहीं जानता था। चिकित्सक ऐसे संवेगों को अभिव्यक्त करने में रोगी को भरपूर प्रोत्साहन देता है।

d) नयी सूचना देना -मनश्चिकित्सा द्वारा चिकित्सक रोगी को कुछ नयी-नयी सूचनाओं को देता है ताकि रोगी के वर्तमान व्यवहार में परिवर्तन किया जा सके।

e) रोगी में उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना - अन्त में मनश्चिकित्सा से रोगी में परिवर्तन के लिए विश्वास तथा उम्मीद उत्पन्न हो जाती है। अपने विवेक द्वारा चिकित्सक हर तरह से परिस्थिति को इस ढंग से मोड़ते

है कि रोगी में यह विश्वास उत्पन्न हो जाए कि उसे मदद की जा रही है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में धनात्मक परिवर्तन होने लगते है तथा उनकी सांवेगिक समस्याएँ कम हो जाती है।

मनोपचार या मनश्चिकित्सा एक लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक रोगी के साथ परस्पर मधुर सम्बन्ध बनाते है। जिससे रोगी की सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का हल हो पाता है।

5.3.3 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य या लक्ष्य-

मनोपचार या मनश्चिकित्सा के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है-

1) रोगी के अभिप्रेरण व साहसशक्ति को बढाना, ताकि वो सही व्यवहार कर सके ।
2) भावों की अभिव्यक्ति द्वारा सांवेगिक समस्याओं को कम करने में मदद करना।
3) अपनी आदतों को बदलने में मदद करना।
4) रोगी के आन्तरिक संघर्षो को एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना।
5) व्यर्थ के कार्यो एवं लक्ष्यों से उसके मन को हटाकर उसको अपनी सामर्थ्य पहचानने में सहायता करना।
6) रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तरह समायोजन करने में सहयोग प्रदान करना।
7) शारीरिक अवस्थाओं में परिवर्तन करना
8) रोगी में अनुपयुक्त व्यवहार को बढ़ाने वाले कारकों को दूर करना।
9) रोगी के सामाजिक वातावरण को परिवर्तित करना।
10) चेतन की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित करना।

5.4 नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल -

नैदानिक मनोविज्ञान में मॉडल से तात्पर्य एक ऐसे ढाँचा से होता है जिसके द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान में विशेषज्ञों द्वारा मानव व्यवहार की व्याख्या की जाती है। मॉडल से इस तथ्य की व्याख्या होती है कि कोई भी व्यवहार किस तरह से विकसित होता है और फिर वह किस तरह से समस्याक हो जाता है। इसके साथ ही समस्यात्मक व्यवहार का मूल्यांकन, उपचार का भी वर्णन होता है।

नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल

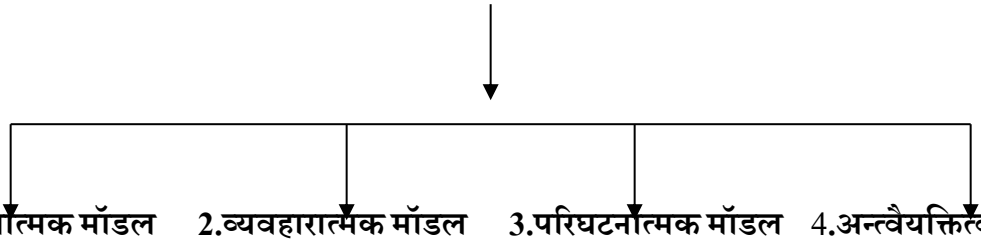

1.मनोगत्यात्मक मॉडल	2.व्यवहारात्मक मॉडल	3.परिघटनात्मक मॉडल	4.अन्त्वैयक्तित्वमॉडल
a)फायडिन मनाविश्लेषण	a)क्रिया प्रसूत सीखना	a)रोजर्स का आत्मसिद्धउपागम	
b)संबंधित मनोगत्यात्मक सिद्धान्त	b)क्लासिकी अनुबन्धन	b)मैस्लो का मानवीय अभिप्रेरणा का उपागम	
	c)सामाजिक सीखना	c)केली का वैयक्तिक संरचना उपागम	

5.4.1 नैदानिक हस्तक्षेप मॉडल के उद्देश्य

नैदानिक मनोविज्ञान में मॉडल के निम्नलिखित उद्देश्य है-

a) मॉडल नैदानिक मनोविज्ञानिकों के चिन्तनों को संगठित करने में मदद करता है।

b) मॉडल नैदानिक मनोविज्ञानिकों के निर्णयों एवं हस्तक्षेपों को निर्देशित करता है।

5.4.2 नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडल

5.4.2.1 मनोगत्यात्मक मॉडल - इस मॉडल का सिगमंड फ्रायड ने प्रतिपादन किया था। इसमें उन्होने मानसिक रोगों के मनोवैज्ञानिक कारणों पर बल डाला। इस मॉडल की निम्नलिखित पूर्वकल्पनाएँ है जिसके आधार पर नैदानिक मनोविज्ञान मानव-व्यवहार की व्याख्या करते है तथा समस्यात्मक व्यवहार का उपचार भी करते है-

a) मानव व्यवहार का निर्धारण वैसे आवेगो, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षो से होता है जो उसके चेतन में नही होते बल्कि अचेतन स्तर पर होते है।

b) सामान्य तथा असामान्य दोनो तरह के व्यवहार मन के भीतर होने वाले संघर्षो, इच्छाओं, आवेगों आदि के द्वारा उत्पन्न होते है

c) इन अंतरा मानसिक क्रियाओं का व्यक्ति सीधे प्रत्यक्षण नहीं कर सकता है परन्तु जब तक इनका स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जाता है, मानव व्यवहार को नहीं समझा जा सकता है और उसके समस्यात्मक व्यवहार का उपचार भी नहीं किया जा सकता है।

मनोगत्यात्मक मॉडल के अर्न्तगत निम्न दो उपागम आते है जिनके द्वारा इस मॉडल की व्याख्या की गयी है-

1. फ्रायडियन मनोविश्लेषण - उलमान्न एवं क्रैसनर (1975) ने फ्रायडियन उपागम या मनोविश्लेषण का एक मेडिकल मॉडल के रूप में वर्णन किया है। इस मॉडल के निम्नलिखित चार प्रकार है-

a) मानसिक नियतिवाद - इसके अर्न्तगत इस बात पर बल डाला जाता है कि मानव व्यवहार का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। यह कारण ऐसा हो सकता है कि उसे बाहर से देखा नहीं जा सकता है तथा स्वयं व्यवहार करने वाले व्यक्ति को इसका पता न हो। कभी-कभी आकस्मिक व्यवहार भी अर्थपूर्ण होते है क्योंकि उनसे व्यक्ति में छिपी हुई दमित इच्छाओं तथा आवेगो के बारे में पता चलता है। व्यक्ति का इस प्रकार का व्यवहार इन्हीं संघर्षो एवं दमित इच्छाओं के कारण करता है। ऐसे छिपे हुए मानसिक संघर्षो एवं इच्छाओं को फ्रायड ने अचेतन कहा है। अपने संबंधी का नाम भूल जाना, दूसरे से ली गई पुस्तक को उन्हें लौटाना भूल जाना, किसी के यहाँ जाकर उसके पास रूमाल छोड़ आना आदि ये व्यवहार किसी न किसी अचेतन इच्छा से निर्देशित होते है और इनका कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है।

b) मानसिक संरचना: मानसिक संरचना के अर्न्तगत **इदम, अंह एवं परांह** आते है और मानव व्यवहार इन्ही तीनों के अन्तःक्रिया का परिणाम होता है।

इदम सुखमय नियमों द्वारा निर्धारित होता है क्योंकि यह अपनी जन्मजात इच्छाओं की तुरन्त संतुष्टि चाहता है, चाहे परिणाम कुछ भी हो।

इदम के बाद **अहं** विकसित होता है। यह इदम् एवं पराहम के बीच एक बॉंध की तरह कार्य करता है। एक साल की अवस्था होने पर अहं का विकास प्रारंभ हो जाता है। अहं को बाहरी माँगो या वातावरण के माँगों से समायोजन स्थापित करना होता है, इसलिए यह वास्तविकता के नियम द्वारा निर्देशित होता है। इस तरह से अहं वातावरण के माँगों के साथ समायोजन स्थापित करने में बुद्धि, तर्क शक्ति आदि का सहारा लेता है तथा साथ-ही-साथ इदम् की माँगो पर एक नियंत्रण भी रखता है।

पराहं -तीसरा प्रमुख पहलू है जिसमें परिवार एवं संस्कृति द्वारा सिखाये गये नैतिकता एवं मूल्य आदि आते है। व्यवहार की उत्पत्ति इदम, अहं तथा पराहं के बीच की अन्तःक्रिया के कारण होता है। जब इन तीनों का लक्ष्य अलग-अलग होता है, तो इसमें आंतरिक मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है। जिसका ठीक से समाधान नहीं होने पर व्यक्ति में असामान्यता विकसित हो जाती है।

c) दुष्चिन्ता एवं रक्षा प्रक्रम - दुष्चिन्ता से तात्पर्य डर एवं आशंका से होता है। इसे मनोविश्लेषणात्मक भाषा में मानसिक दर्द भी कहा गया है। दुष्चिन्ता के कारण व्यक्ति में व्याकुलता तथा दर्द होता है, इसलिए व्यक्ति का अहं उससे अपने आप को बचाने के लिए कुछ उपाय ढूँढता है। अहम इससे बचने के लिये कुछ तर्क संगत उपाय ढूँढता है। परन्तु जब वह इसमें सफल नहीं हो पाता है तो कुछ अतर्कसंगत उपायों को अपनाता है, इन अतर्कसंगत उपयों को अहं रक्षा प्रक्रम कहा जाता है। ऐसे उपाय अचेतन स्तर पर होते है। जैसे-दमन, प्रतिक्रिया निर्माण, प्रक्षेपण, यौक्तिकीकरण, विस्थापन, प्रतिगमन आदि

d)मनोलैंगिक अवस्थाएँ -फ्रायड के अनुसार जैसे-जैसे जन्म के बाद बच्चे का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे वह विभिन्न मनोलैंगिक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। प्रत्येक अवस्था में बच्चा का शरीर के किसी एक भाग में सबसे अधिक आनंद मिलता है। ऐसी अवस्थाएँ निम्नांकित पाँच है-

i) मुखावस्था -यह जन्म से प्रथम दो साल की अवधि की अवस्था होती है और इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र मुँह होता है और बच्चा चूसने, निगलने, दाँत काटने आदि जैसी क्रियाओं से आनन्द प्राप्त करता है।

ii) गुदावस्था -यह अवस्था दो साल से तीन साल की होती है तथा इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र शरीर का गुदा क्षेत्र होता है। इस अवस्था में बच्चे मल-मूत्र त्यागने से संबंधित क्रियाओं से आनंद उठाते है।

iii) लिंग प्रधानावस्था या लैंगिक अवस्था - यह अवस्था तीन साल से पाँच साल तक की होती है तथा इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र जनेन्द्रिय होते है। इस अवस्था में बच्चे अपने जनेन्द्रिय को छूते है, मलते है तथा खींचते है जिनसे उनके जनेन्द्रिय में संवेदन उत्पन्न होता है और उन्हें लैंगिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी अवस्था में लड़का में मातृ मनोग्रन्थि तथा लड़कियों में पितृ मनोग्रन्थि का विकास होता है।

iv) अव्यक्तावस्था या विलीनावस्था -यह अवस्था छह साल से प्रारंभ होकर बारह वर्ष की आयु तक की होती है। इस अवस्था में बच्चों में छिपी हुई लैंगिक इच्छाएँ होती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी लैंगिक इच्छाओं को अनैतिक समझकर उनका दमन कर देते हैं तथा अन्य बाहरी चीजों एवं घटनाओं मे अधिक रूचि दिखलाना आरंभ कर देते है।

v) जनेन्द्रियावस्था -मनोलैंगिक विकास की यह अंतिम अवस्था है जो तेरह वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर निरंतर चलती रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति में यौग अंग परिपक्व हो जाते है तथा उन्हें विषमलिंग कामुकता से आनन्द आता है।

फ्रायड का मत है कि प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति को उचित संतुष्टि मिलनी आवश्यक है। यदि किसी अवस्था में उसे उचित संतुष्टि प्राप्त नहीं होती है, तो उसका व्यवहार उसी अवस्था पर स्थायीकृत हो जाता है। जैसे-यदि किसी बच्चों को मुखावस्था में उचित संतुष्टि नहीं मिलती है तो उसमें अत्यधिक खाने की प्रवृत्ति, पान खाने की प्रवृत्ति, खाते समय अँगुली चाटने की प्रवृत्ति, अधिक बोलने की प्रवृत्ति जैसा व्यवहार देखने को मिलता है।

2. संबंधित मनोगत्यात्मक उपागम -फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मौलिक विचारों का बाद में संशोधन किया गया। इरिक्सन, एडलर, ओटो रैंक, युंग, सुल्लीभान, अन्ना फ्रायड तथा कोहट आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक है जिन्होनें उनके मौलिक विचारों को संशोधित किया। इन लोगों ने फ्राइड के विचारों में निम्न संशोधन किये-

a) फ्रायड ने अभिप्रेरण में अचेतन मूलप्रवृत्ति को महत्त्वपूर्ण बताया था। इस बिन्दु पर फ्रायड के विचारों से असहमति।

b) मानव व्यवहार पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव को बताया।

c) इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व के चेतन पहलुओं पर ज्यादा ध्यान दिया।

d) व्यक्तित्व विकास बाल्यावस्था में ही पूरा नहीं होता है बल्कि वयस्कावस्था में भी चलता रहता है।

इनके अनुसार व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इरिक इरिक्सन द्वारा व्यक्तित्व विकास के लिए आठ मनोसामाजिक अवस्थाओं का वर्णन किया है जो फ्रायड के पाँच मनोलैंगिक अवस्थाओं से अधिक विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है। इरिक्सन का मत है कि मनोसामाजिक विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति में एक सामाजिक संकट उत्पन्न होता है, जिसका यदि वह सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तो व्यक्ति में धनात्मक परिणाम होते है और वह अगली अवस्था में सामाजिक संकट के साथ ठीक ढंग से निबट पाता है। यदि वह इस संकट से ठीक ढंग से निबट नहीं पता है तो इससे उसके व्यक्तित्व का आगे का विकास रूक जाता है।

एलडर के अनुसार व्यक्तित्व विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक मूलप्रवृत्ति न होकर हीनता बतलाया गया है। एलडर ने व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों पर अधिक बल डाला है। उन्होनें कहा कि परिवार में व्यक्ति के जन्म क्रम का प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। एलडर के समान रैंक ने भी फ्रायड द्वारा यौन एवं आक्रामकता को मानव व्यवहार का प्रमुख आधार नहीं माना।

दोष-

a) मनोगत्यात्मक मॉडल में इदम, अहं, पराहं, अचेतन अभिप्रेरणा तथा दमन आदि ऐसे ही संप्रत्यय है जिनकी माप नही की जा सकती है।

b) इस मॉडल में मानव के नकारात्मक पहलू पर जैसे लैंगिक एवं आक्रमक मूलप्रवृत्तियों पर अधिक बल डाला गया है जबकि आंतरिक वृद्धि, आन्तरिक शक्ति तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को ध्यान नही रखा गया।

5.4.1.2 व्यवहारात्मक मॉडल या अधिगम सिद्धान्त मॉडल

व्यवहारात्मक मॉडल ने मानव के व्यवहार उसका पर्यावरणीय एवं व्यक्तिगत अवस्थाओं जो उसे प्रभावित करता है, के संबंध पर अधिक बल डालता है। इस मॉडल की मुख्य मान्यता यह है कि मानव व्यवहार सीखना या अधिगम द्वारा प्रभावित होता है जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होता है। इस मॉडल को कभी-कभी सीखना या अधिगम सिद्धान्त मॉडल भी कहा जाता है। व्यवहारात्मक मॉडल मेंवैयक्तिक विभिन्नता तथा लोगों के बीच

समानता की व्याख्या की जाती है। वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ है, इसकी व्याख्या व्यक्ति के सीखने के अपूर्व अनुभवो के रूप में की जाती है।

विशेषताऐं-

a) व्यवहारात्मक मॉडल में व्यवहार के निर्धारण में पर्यावरणी कारकों पर अधिक बल डाला जाता है, न कि वंशानुगत एवं जैविक कारकों पर।

b) व्यवहारात्मक मॉडल में नैदानिक मूल्यांकन के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि रोगी के वर्तमान समस्या को कैसे सीखा और वह समस्या किस तरह से बनी हुई है, इसकी पहचान करके उसके व्यवहार को सुधारा जाता है।

c) व्यवहारात्मक मॉडल में नैदानिक मूल्यांकन तथा उपचार दोनों एक दूसरे से जुड़े होते है।

व्यवहारात्मक मॉडल के रूपान्तरण

1. क्रियाप्रसूत सीखना -व्यवहारात्मक मॉडल के क्रियाप्रसूत रूपान्तर का विकास बी0एफ0 स्कीनर द्वारा किया गया। स्कीनर का मत है कि किसी व्यवहार की उत्पत्ति, तथा उससे उत्पन्न परिवर्तन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पर्यावरणी उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न होने वाले व्यवहारों के बीच के संबंध को समझा जाए। इस उपागम में उद्दीपकों, अनुक्रियाओं एवं उनके परिणामों के कार्यवाही संबंध पर बल डाला गया है। उदाइरण-माना कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में आक्रामक व्यवहार करता है। इस उपागम में यह आक्रामक व्यवहार तथा उसके परिणाम के बीच संबंध जोड़कर उसकी व्याख्या की जाएगी। इस आक्रामक व्यवहार के बाद उसे पुरस्कार मिलता है या उसे किसी प्रकार का लाभ होता है अर्थात् उसक परिणाम सुखद होता है, तो उसकी व्याख्या यह होगी कि व्यक्ति ने आक्रमक व्यवहार करना सीख लिया है।

2. क्लासिकी अनुबंधन या प्रतिवादी सीखना - इसे पैवलव द्वारा प्रतिपादित किया गया। व्यवहारात्मक मॉडल के इस रूपान्तर का उपयोग अधिकतर दुष्चिन्ता विकृतियों से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने में किया गया है। इस रूपान्तर में अनुबंधित उद्दीपक तथा स्वाभाविक उद्दीपक के बीच साहचर्य के सीखने पर बल डाला जाता है। इस तरह के सीखने की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अनुबंधित उद्दीपक द्वारा ही अनुक्रिया की उत्पत्ति होती है। इसके अनुसार व्यक्ति अंधेरे से डरना इसलिए सीख जाता है, कि व्यक्ति में अंधेरे में तरह-तरह के डर-उत्पन्न करने वाले उद्दीपक जैसे डरावना स्वप्न, डरावना स्वप्नचिन्तन आदि उत्पन्न होने लगते है।

जैसे यदि कोई व्यक्ति सामाजिक परिस्थति से अपने आप को डर से दूर रखता है, तो इसका कारण ऐसी परिस्थिति में उसमें उत्पन्न नकारात्मक एवं दर्दनाक अनुभव हो सकते है। (जैसे-ऐसी सामाजिक परिस्थिति में यदि पहले उसका काफी मजाक उड़ाया गया हो) यह क्रिया प्रसूत अनुबंधन का उदाहरण होगा। परन्तु उसमें इस तरह की सामाजिक परिस्थिति से डर इसलिए भी उत्पन्न हो सकता है क्योंकि हो सकता है कि ऐसी अनुभवो से उत्पन्न बेचैनी का सम्बन्ध या साहचर्य सामाजिक पार्टी के साथ स्थापित हो चुका हो। यह क्लासिकी अनुबंधन का उदाहरण होगा।

स. सामाजिक सीखना या संज्ञानात्मक व्यवहारपरक सीखना - इस मॉडल का प्रतिपादन अलवर्ट वैण्डुरा तथा वाल्टर मिसकेल ने किया था। उन्होने अपने उपागम में प्रेक्षणात्मक सीखने पर बल डाला है। वैण्डुरा का मत है कि व्यक्ति न केवल क्रियाप्रसूत एवं क्लासिकी अनुबंधन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सीखता है बल्कि जब वह दूसरों के

व्यवहारों को प्रेक्षण करता है, उसके द्वारा भी सीखता है। इन्होंने अपने एक प्रयोग में दिखलाया है कि जब मानव प्रयोज्य को मॉडल दिखाया जाता है तो वह उसके व्यवहार को केवल देखकर ही सीख लेते है। इसके लिए किसी अभ्यास या पुरस्कार की भी जरूरत नहीं पड़ती है। **वैण्डुरा, रॉस एवं रॉस (1963)** ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिन बच्चों ने मॉडल को **'बोबो'** नामक गुड़िया के प्रति आक्रामक व्यवहार करते पाया, वे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना सीख गये तथा जिन बच्चों ने मॉडल को बोबो के प्रति शांतिपूर्ण व्यवहार करते हुए देखा, वे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना सीख गये।

इस मॉडल की नैदानिक हस्तक्षेप अर्थात् उपचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। व्यवहारात्मक मापन में व्यवहारात्मक साक्षात्कार, रेटिंग मापनी, आत्म रिपोर्ट प्रश्नावली, प्रत्यक्ष प्रेक्षण तथा मनोदैहिक अनुक्रियाओं के द्वारा व्यवहार की माप की जाती है। व्यवहारात्मक मापन का मुख्य कार्य व्यवहार चिकित्सा में मदद पहुँचाना होता है।

गुण:-

a) इस मॉडल की विश्वसनीयता तथा वैधता अधिक है क्योंकि इसके द्वारा व्यवहार की उत्पत्ति तथा परिवर्तन की व्याख्या वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक ढंग से की गयी है

b) इस मॉडल में जितने भी संप्रत्यय लिये गये है उन्हें अनुभव के आधार पर इसके अर्न्तगत रखा गया है।

दोष-

a) व्यवहारात्मक मॉडल में वैयक्तिक व्यवहार की व्याख्या की जाती है परन्तु स्वयं व्यक्ति की उपेक्षा की जाती है।

b) व्यवहारात्मक मॉडल में जो भी कार्यविधि एवं परीक्षण का उपयोग किया जाता है, वे कम वैध एवं वैज्ञानिक है।

5.4.1.3 परिघटनात्मक मॉडल

परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार वातावरण में मौजूद उद्दीपकों को प्रत्यक्षीकरण के आधार पर मानव व्यवहार का निर्धारण होता है। इस मॉडल में इस बात पर बल डाला जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति वातावरण को अपने-अपने ढंग से देखता है और उसके व्यवहार में इसकी छवि साफ दिखाई देती है। इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है-मान लिया जाय कि दो छात्र शिक्षक का भाषण सुन रहे है। हो सकता है कि इसमें एक को वह भाषण काफी रूचिकर लगा तथा दूसरे को उस भाषण में नीरसता का अनुभव हुआ। परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक छात्र ने शिक्षक के भाषण को अपने-अपने ढंग से सुना और महसूस किया।

गुण-

a) मानव एक सक्रिय चिन्तनशील प्राणी होता है और वह स्वयं, अपने द्वारा किये गये कार्यो के लिए जवाबदेह होता है। वह अपने व्यवहार के बारे में पूरी तरह से सचेत होकर कोई निर्णय लेता है।

b) कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को तभी समझ सकता है जब उसमें उस दूसरे व्यक्ति की आँखों से वातावरण को देखने की क्षमता होती है। इसका मतलब मानव व्यवहार तभी समझने योग्य होता है जब उसे उस व्यक्ति के नजर से देखा जाय जिसका प्रेक्षण किया जा रहा है।

स्रोत:- परिघटनात्मक मॉडल के निम्नलिखित स्रोत है-

a) रोजर्स का आत्म-सिद्धि उपागम - प्रत्येक व्यक्ति में वृद्धि करने एवं आगे की ओर बढ़ने की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इसी अभिप्रेरण से मानव के सभी तरह के व्यवहार प्रेरित होते है। इस अभिप्रेरण को आत्म-सिद्धि कहा जाता है। । इस तरह का प्रयास व्यक्तिं जन्म से ही करता है और पूरी जिन्दगी चलते रहता है।

रोजर्स के अनुसार व्यक्ति का सबसे प्रमुख अभिप्रेरण, आत्म-सिद्धि अभिप्रेरण होता है। इस तरह के अभिप्रेरण द्वारा दो तरह की आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है-

1. स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता: स्वीकारात्मक सम्मान से तात्पर्य दूसरों के द्वारा स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होती है। ऐसी आवश्यकता तब देखने को मिलती है जब दूसरों से सम्मान मिलता है और संतुष्टि होती है और जब ये सम्मान नहीं मिलता है तो व्यक्ति में असंतोष होता है। **2. दूसरे व्यक्तियों से सम्मान:** आत्म सम्मान से तात्पर्य इस बात से होता है कि व्यक्ति में अपने आप को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता होती है। व्यक्ति में जब अच्छे या सुखद अनुभव होते है तब यह आवश्यकता उत्पन्न होती है। जब व्यक्ति को समाज में कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मान-सम्मान मिलता है, तो इसमें धनात्मक आत्म-सम्मान की भावना या प्रेरणा उत्पन्न होती है।

रोजर्स के अनुसार, यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में संगति या समानता होती है तो इससे एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास होता है और वह सामान्य सामाजिक व्यवहार करेगा। इस तरह के स्वस्थ व्यक्तित्व को रोजर्स ने एक सफल व्यक्ति कहा। यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में असंगति होती है या अंतर होता है, इससे उसने चिन्ता उत्पन्न होती है और व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता आने लगती है।

b) मैसलो का मानवीय अभिप्रेरणा का सिद्धान्त - मैस्लो के अनुसार मानव व्यवहार का कोई ना कोई लक्ष्य या उद्देश्य होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति अपने लक्ष्यों को इस प्रकार प्राप्त करता है, कि उसके जीवन में व्यक्तित्व में समायोजन बना रहे। जब कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो उसमें मानसिक तनाव, चिन्ता तथा अन्य मानसिक विकृतियों आदि की सम्भावना बढ़ जाती है। मैस्लों ने इस सिद्धान्त में मानव के धनात्मक एवं सर्जनात्मक पहलू पर बल डाला है। उन्होनें अपने सिद्धान्त में पॉच तरह की मुख्य आवश्यकताओं को बताया है। इन आवश्यकताओं को उन्होनें एक पदानुक्रम (बढ़ते क्रम में) बताया है।

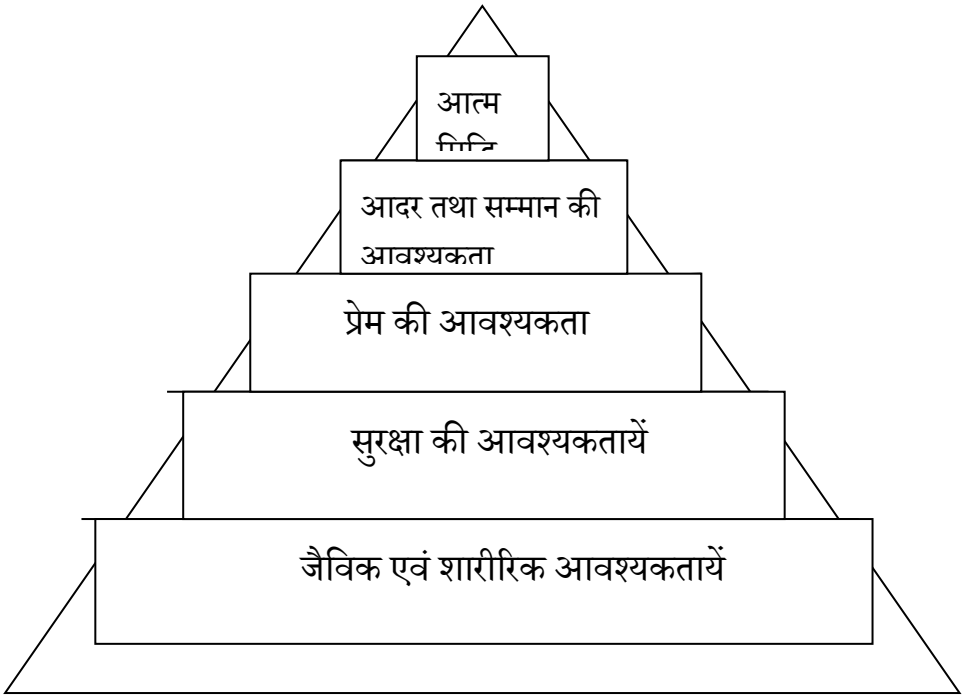

मैस्लो के अनुसार आवश्यकताओं की पदानुक्रमिक व्यवस्था

मैस्लो के अनुसार

पहले स्तर पर व्यक्ति की **जैविक एवं शारीरिक आवश्यकतायें** होती है। जैसे-भूख, प्यास काम (सेक्स) सम्बन्धी आवश्यकतायें। सबसे पहले व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

दूसरे स्तर पर **सुरक्षा की आवश्यकतायें** होती है। जब प्रथम स्तर की आवश्यकतायें पूरी हो जाती है, तब उसे अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है। जैसे- मकान, वस्त्र आदि।

तीसरे स्तर पर मैस्लो ने **प्रेम की आवश्यकता** को रखा। जब व्यक्ति की प्रथम व द्वितीय स्तर की आवश्यकतायें पूरी हो जाती है, तब उसे प्रेम की आवश्यकता होती है। जैसे - मित्र, सम्बन्धी एवं जीवन साथी आदि।

चौथे स्तर पर व्यक्ति अपने अन्दर **आदर तथा सम्मान की आवश्यकता** की पूर्ति चाहता है। इसके लिए वह समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा पाने के लिए प्रयास करता है।

पाँचवे तथा अन्तिम स्तर पर मैस्लो ने **आत्स सिद्धि (आत्म वास्तविकरण)** को स्थान दिया है। ये व्यक्ति के जीवन का चरम बिन्दु है। एक परिपक्व व्यक्ति में आत्म सिद्धि के लक्षण होते है और ये बहुत ही कम व्यक्तियों के अन्दर मिलते है। इसके लिए मैस्लो ने उन व्यक्तियों का अध्ययन किया था, जिन्होने अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूप से पहचाना था। जैसे- एब्राहम लिंकन, बीथोवेन, रूजवेल्ट, आइस्टीन आदि।

मैस्लो ने आत्मसिद्धि आवश्यकता को उच्च स्तर की माना है। व्यक्ति की ऊपरी आवश्यकताओं की पूर्ति तब संभव हो पाती है, जब तक की उसकी निचले स्तर की आवश्यकताये पूरी न हो जायें। उन्होनें कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में

सम्पूर्ण सिद्धि की अन्तःशक्ति होती है। फिर भी व्यक्ति इस स्तर पर तब तक नहीं पहुॅच सकता जब तक उसके निचले स्तर की आवश्यकतायें पूरी ना हो जायें।

c) केली का वैयक्तिक संरचना उपागम- केली के अनुसार मानव व्यवहार की व्याख्या व्यक्तिगत संरचना के आधार पर की। वैयक्तिक संरचना से तात्पर्य एक ऐसे साधन से होता है जिसके सहारे व्यक्ति अपने वातावरण की घटनाओं की व्याख्या करता है तथा उसे समझने की कोशिश करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार के परिणाम को ध्यान में रखता है और उसे पूरा करता है। व्यक्ति अपनी जिन्दगी की घटनाओं को समझने की कोशिश करता है तथा उसके बारे में पूर्वानुमान लगाता है। जब कुछ कारण से व्यक्ति अपनी सामाजिक अनुभवों के बारे में गलत एवं दोषपूर्ण संरचना विकसित कर लेता है तो उसका व्यवहार समस्यात्मक हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति में व्यक्तिगत संरचना की संख्या कम है तो वह कुछ सीमित संरचनाओं की ही घटनाओं को ही समझकर उनका अनुमान लगा पायेगा और सही व्यवहार नही कर पायेगा। केली के अनुसार व्यक्ति में अपने इस व्यक्तिगत संरचना को बदलने की भी क्षमता होती है और व्यक्ति इसमें परिवर्तन करके उपयुक्त व्यवहार कर सकता है।

गुण:-

a) परिघटनात्मक मॉडल व्यक्ति के अनुभवों को काफी महत्त्व देता है।

b) परिघटनात्मक मॉडल में मानव जीवन की अन्तःशक्ति तथा उसके आगे बढने की क्षमता पर बल डाला गया है।

दोष:-

a) इस मॉडल में चेतन अनुभूति पर अधिक बल डाला है तथा अचेतन, अभिप्रेरण, परिस्थिति के प्रभाव तथा कुछ जैविक कारकों की अनदेखी की गयी है।

b) परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार आत्म-सिद्धि व्यक्ति की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है, इससे विकास के कारण का तो पता चला है परन्तु उसके विकास की व्याख्या नहीं हो पायी है।

5.4.1.4 अन्तर्वैयक्तिक मॉडल

इस मॉडल के अनुसार रोगी की नैदानिक समस्या की व्याख्या उसके भूत एवं वर्तमान के सम्बन्धो के आधार पर और रोगी की अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों के आधार पर की जाती है। व्यक्ति अन्तवैयक्तिक (आपसी) समायोजन के माध्यम से अन्तःक्रियाओं को करता है।

अन्तःवैयक्तिक समायोजन का तात्पर्य दो व्यक्तियों के बीच एक समायोजन से होता है। वे दो व्यक्ति आपस में संचार एवं अन्तःक्रिया का एक विशेष पैटर्न बना लेते है। ये पैटर्न उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में तथा आवसी सम्बन्ध बनाने में मदद करता है। जब व्यक्ति के यह अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध किसी कारणवश खराब या दोषपूर्ण हो जाते है, तो उसमें कई तरह की मानसिक समस्यायें उत्पन्न होने लगती है।

बचपन में जब माता-पिता बच्चों में आत्म-प्रत्यय (स्वयं को पहचानने की क्षमता) को ठीक तरह से विकसित नहीं होने देते है, तो ऐसे बच्चे दूसरों के साथ स्वस्थ्य सम्बन्ध नहीं बना पाते है और उनमें असमायोजित व्यवहार विकसित हो जाता है। जब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार के बारे में दोषपूर्ण पूर्वकल्पना बना लेता है तो उसके

अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध कमजोर हो जाते है और उसके इस गलत विश्वास के कारण उसके अन्दर कई समस्यायें उत्पन्न हो जाती है।

जब व्यक्ति को ऐसा लगता है कि वह समाज के साथ समायोजन नहीं कर पा रहा है। जबकि वह सामाजिक भूमिकाओं का पूरी तरह से निर्वाह कर रहा है तो उससे उसके समाज के अन्य लोगों के साथ अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध कमजोर पड़ जाते है और कई मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस मॉडल के आधार पर जो चिकित्सा की जाती है उसे अन्तःवैयक्तिक चिकित्सा कहते है। इसका उपयोग व्यक्तित्व विकृतियों, विषाद आदि के रोगियों के उपचार में किया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी की उन समस्याओं पर विचार किया जाता है कि रोगी कि वे कौन-कौन सी समस्यायें है जिनके कारण उसके अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध खराब हो गये है? रोगी को कुछ ऐसे तरीको को बताया जाता है जिनके द्वारा वे इन सम्बन्धों को सुधार सके।

इस मॉडल का प्रतिपादन फ्रायड के शिष्य अल्फ्रेड एडलर, इरिक फोम, कैरेन हार्नी, सुलिमान तथा इरिक इरिक्सन ने किया। इसमें मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर बल डाला कि नैदानिक समस्याओं की उत्पत्ति में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारको की मुख्य भूमिका होती है।

गुण:-

a) अन्तर्वैयक्तिक मॉडल में व्यक्ति के निकट व्यक्तिगत संबंध पर ध्यान दिया जाता है और उसकी समस्याओं को समझने की कोशिश की जाती है। इसलिए इस मॉडल की व्यवहारिक उपयोगिता अधिक है।

b) इस मॉडल में व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को ध्यान में रखा जाता है और उसकी समस्याओं का उपचार किया जाता है।

दोष:-

a) अन्तर्वैयक्तिक मॉडल अन्तर्वैयक्तिक संबंधों के बारे पूरी जानकारी नही देता है इसलिए इस मॉडल द्वारा नैदानिक समस्याओं की व्याख्या पूरी तरह नहीं होती है।

b) इस मॉडल द्वारा नैदानिक समस्याओं एवं उसके उपचार की विधियों की जो व्याख्या होती है उसमें वस्तुनिष्ठता कम है।s

5.5 मनोविश्लेषणवादी या मनोगत्यात्मक चिकित्सा

मनोपचार की सबसे पुरानी चिकित्सा विधि है। फायड को मनश्चिकित्सा का संस्थापक कहा जाता है। फ्रायड ने अपने रोगियों को गहन निरीक्षण किया। इस निरीक्षण के आधार पर उन्होंने मानव संरचना, मनोविकृति के स्वरूप तथा मनोवैज्ञानिक उपचार के बारे में बहुत सी उपकल्पनायें बनाई। उन्होंने अपने इस प्रयास के द्वारा मनोविश्लेषण को मनोपचार की एक महत्त्वपूर्ण प्रविधि के रूप में विकसित किया। इसके सन्दर्भ में 1990 में उसकी पुस्तक **''दी इन्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम''** प्रकाशित हुई।

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को अपने आप को उत्तम ढंग से समझने में मदद करने से होता है ताकि वह रोगी पहले से अधिक समायोजी ढंग से सोच सके तथा व्यवहार कर सके। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि जब रोगी यह देख पाता है कि कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करने का क्या वास्तविक कारण है (जो

प्रायः अचेतन में होते है) तथा जब वे यह देखते है कि वे कारण बहुत ठोस एवं वैध नहीं है, तो वे अपने आप कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करना बंद कर देते है। इस तरह से रोगी को लक्षण अपने आप दूर हो जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मानव व्यक्तित्व का केन्द्रीय आधार बिन्दु इदम या इड है। इसका मूल स्वभाव काम (सेक्स) सम्बन्धी इच्छाओं तथा आवेशों को पूरा करना है। यह सुखवादी सिद्धान्त पर कार्य करता है अर्थात् केवल खुशी चाहता है। यह व्यक्ति के व्यवहार को अचेतन रूप से अभिप्रेरित करता है।

जैसे शिशु बड़ा होता जाता है तो वह अपने जीवन की वास्तविकताओं को समझने लगता है। वह अपने संवेगों व आवेगों पर नियंत्रण करना सीखता है और उसमें अहम या इगो विकसित होता है। इससे वह अपने परिवार तथा समाज के प्रति समायोजन करना सीखता है। आगे चलकर व्यक्ति के पराहम या सुपर इगो का विकास होता है जो व्यक्ति के व्यवहार का नैतिक कसौटी पर मूल्यांकन करता है। यह व्यक्ति को अनैतिक व्यवहार या समाज द्वारा वर्जित व्यवहार करने की अनुमति नहीं देता है। परन्तु व्यक्ति के इन व्यवहारों या आवेगों का मूल स्रोत इदम होता है। इसलिये पराहम चेतन स्तर पर से उसकी इन सभी अनैतिक इच्छाओं या आवेगों को दबा देता है और अचेतन भाग में डाल देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, अचेतन मन में जाकर भी व्यक्ति की ये अनैतिक इच्छायें या आवेग समाप्त नहीं होते है और विभिन्न तरह से इन्हें व्यक्त करते रहते है। ये इच्छायें पराहम् को चकमा तथा झांसा देने लगती है।

फ्रायड के अनुसार, जब एक सामान्य व्यक्ति की अनैतिक इच्छायें या आवेग इसके अहम तथा पराहम के नियंत्रण में नहीं आते और उन्हें चकमा देने लगते है तो वह पराहम के डर से भी चिन्तित होने लगता है और उसमें समाज के डर के कारण चिन्ता उत्पन्न होने लगती है। यदि किसी व्यक्ति में ऐसा मानसिक संघर्ष (अनैतिक इच्छाओं की तीव्रता तथा पराहम के प्रबल रूप के कारण) लगातार चलता रहता है, तो उसकी चिन्ता धीरे-धीरे दुश्चिता तंत्रिका ताप का रूप ले लेती है।

फ्रायड के अनुसार मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति कुछ ऐसी होती है। रोगी का अहम् उसके आन्तरिक मानसिक संघर्षो या द्वंद्वों से कमजोर पड़ जाता है। इन मानसिक संघर्षो में इदम की नाजायज माँग (मूलप्रवृन्तिक माँग) और पराहम की नैतिकतापूर्ण मॉग का ही जोर रहता है। इन्हीं संघर्षो से निबटने के लिए व्यक्ति को चिकित्सक की आवश्यकता पड़ती है। इसमें चिकित्सक तथा रोगी एक दूसरे को मदद करते है तथा अपना कार्य प्रारम्भ कर देते है। इदम तथा पराहम के संघर्षो के कारण व्यक्ति का अहम बीमार पड़ जाता है। रोगी चिकित्सक के सामने उन सभी सामग्रियों को रख देता है जो उसे परेशान करती है। चिकित्सक उन सभी अचेतन मन की सामग्रियों को रोगी के सामने रखकर उनकी व्याख्या करता है। इससे रोगी की उसकी बातें समझ में आने लगती है और अपनी भूल तथा अज्ञानता का अहसास होने लगता है। अन्त में चिकित्सक की मदद से अन्त में रोगी के अहम् को अपनी खोई हुई मानसिक ऊर्जा पर नियंत्रण करना आ जाता है और उसका व्यवहार सामान्य होने लगता है।

5.5.1 मनोविश्लेषणात्मक उपचार के निम्नांकित तीन मुख्य उद्देश्य है-

a) रोगी के समस्यात्मक व्यवहार को समझकर उसमें बौद्धिक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना।

b) रोगी में सूझ विकसित होने के बाद उस सूझ के कारण के बारे में पता लगाना ।

c) धीरे-धीरे रोगी के इदम तथा पराहं की क्रियाओं पर अहं के नियंत्रण को बढ़ाना ।

5.5.2 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के चरण-

इस चिकित्सा में ऐसे संघर्ष, इच्छायें, डर आदि जो रोगी के अचेतन मन में होते है उन्हें बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित करने की कोशिश की जाती है ताकि उससे उत्पन्न होने वाले संवेगात्मक एवं समायोजन संबंधी कठिनाइयों को रोगी ठीक ढंग से सुलझा सके। इस प्रविधि में चिकित्सक को मनोविश्लेषक कहा जाता है तथा इस विधि को निर्देशात्मक चिकित्सा भी कहा जाता है। इनमें प्रमुख चरण निम्नांकित है-

1) स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था - फ्रायड की चिकित्सा प्रणाली की सबसे पहली अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की होती है। रोगी को एक मन्द प्रकाश कक्ष या कमरा में एक आरामदेह एवं गद्दीदार कोच पर लेटा दिया जाता है तथा चिकित्सक रोगी के पीछे बैठ जाता है। चिकित्सक रोगी से कुछ देर तक सामान्य ढंग से बातचीत करता है और रोगी से यह अनुरोध करता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता जाए, उसे वह बिना किसी संकोच के कहता जाए, चाहे वे विचार सार्थक हों या निरर्थक हों, नैतिक हों या अनैतिक हों। रोगी की बातों को चिकित्सक ध्यानपूर्वक सुनता है। इस प्रविधि की स्वतंत्र साहचर्य की विधि कहा जाता है जिसका उद्देश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षो को कुरेदकर चेतन स्तर पर लाना होता है।

2) प्रतिरोध की अवस्था -प्रतिरोध की अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था के बाद उत्पन्न होती है। रोगी जब अपने मन में आने वाले विचारों को कहकर चिकित्सक को सुनाता है, तो इसी प्रक्रिया में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहाँ वह अपने मन के विचारों को व्यक्त नहीं करना चाहता है और वह या तो अचानक चुप हो जाता है या कुछ बनावटी बात जान-बूझकर करने लगता है। इस अवस्था को प्रतिरोध की अवस्था कहा जाता है। प्रतिरोध की अवस्था तब उत्पन्न होती है जब रोगी के मन में शर्मनाक एवं चिन्ता उत्पन्न करने वाली बात आ जाती है जिसे वह चिकित्सक को नहीं बतलाना चाहता है। चिकित्सक इस प्रतिरोध की अवस्था को खत्म करने का प्रयास करता है ताकि चिकित्सा को आगे बढ़ाया जा सके। प्रतिरोध को खत्म करने के लिए वह सुझाव, सम्मोहन, लिखकर विचार व्यक्त करने, पेंन्टिंग, चित्रांकन आदि का सहारा लेता है। वह रोगी के साथ से घनिष्ठ संवेगात्मक संबंध स्थापित कर लेता है। चिकित्सक रोगी का विश्वासपात्र बनता है ताकि प्रतिरोध की इच्छाओं को आसानी से व्यक्त कर सके। प्रतिरोध समाप्त करना चिकित्सक के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य होता है, जिसे काफी सावधनीपूर्वक करना होता है।

3) स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था -रोगी के अचेतन में जो दमित इच्छायें, बाल्यावस्था की मनोलैंगिक इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्ष होते है उन्हें विश्लेषण स्वप्न का अध्ययन करके बाहर लाने का प्रयास करता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति अपने अचेतन की दमित इच्छाओं केा पूरा करता है। इसलिए रोगियों के स्वप्नों का विश्लेषण करके चिकित्सक उसके अचेतन के संघर्षो एवं चिन्ताओं के बारे में जान पाते है। रोगी के स्वप्नों के अव्यक्त विषयों के अर्थ को विश्लेषक समझता है जिससे रोगी के मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई के वास्तवित कारण को समझने में मदद मिलती है।

4) स्थानातरण की अवस्था -जैसे-जैसे रोगी एवं चिकित्सक के बीच विश्वास एवं लगाव हो जाता है उनके बीच सांवेगिक नये संबंध भी उभर कर सामने आ जाते है। रोगी के जैसे संबंध या मनोवृत्ति अपने शिक्षक, माता या पिता के प्रति होती है, वैसी ही मनोवृत्ति या संबंध वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर लेता है। इसे ही स्थानान्तरण

कहा जाता है। स्थानान्तरण विकसित होने से रोगी शांत मन से एवं पूर्व विश्वास के साथ अपने विचारों की अभिव्यक्त करता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि चिकित्सक एक ऐसा व्यक्ति है जिनके सामनें वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं मानसिक द्वन्दों के बारे में खुलकर अभिव्यक्त कर सकता है।

स्थानान्तरण के तीन प्रकार होते है।

a) धनात्मक स्थानान्तरण -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रतिक्रियाओं को दिखलाता है। इसमें चिकित्सा का वातावरण पहले से और भी अधिक सौहार्द्रपूण बन जाता है और रोगी सुरक्षित अनुभव करता है तथा वह अचेतन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति खुलकर करता है।

b) ऋणात्मक स्थानान्तरण -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपनी घृणा एवं संवेगात्मक अलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है। चिकित्सक रोगी के घृणा एवं आक्रामक व्यवहारों का केन्द्र होता है। इसलिए यहाँ उन्हें काफी सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है तथा वह रोगी का विश्वासपात्र बनकर उसके घृणा भावों को समझता है ताकि चिकित्सा आगे की ओर बनी रहे।

c) प्रति स्थानान्तरण -इसमें विश्लेषक ही रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक लगाव दिखाता है। प्रतिस्थानान्तरण की स्थिति से चिकित्सक की अक्षमता का पता चलता है और ऐसे चिकित्सक के बारे में फ्रायड ने कहा है कि उन्हें पहले अपना मनोविश्लेषण करवा लेना चाहिए। ऐसे विश्लेषक या चिकित्सक को आदर्श नहीं माना जाता है।

d) समापन की अवस्था -चिकित्सा के अन्त में विश्लेषक के सफल प्रयास के बाद रोगी को अपने संवेगात्मक कठिनाई एवं मानसिक संघर्षो के अचेतन कारणों का एहसास होता है। जिससे रोगी में सूझ का विकास होता है। सूझ का विकास हो जाने से उसके आत्म प्रत्यक्षण तथा सामाजिक प्रत्यक्षण में परिवर्तन आ जाता है। इससे रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों में धनात्मक परिवर्तन होता है। जब रोगी में सूझ का विकास हो जाता है, तब चिकित्सक रोगी से धीरे-धीरे संबंध-विच्छेद करने का प्रयास करता है। यहाँ चिकित्सक को सावधानी बरतनी पड़ती है कि वह संबंध-विच्छेद अचानक न करे क्योकि ऐसा करने से कभी-कभी रोगी में नये लक्षण प्रकट को जाते है।

गुण:-

a) मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा द्वारा चिकित्सा अचेतन की दमित इच्छाओं, संघर्षो एवं उलझनों को सुलझाया जाता है, इसलिए इससे जो उपचार होता है, वह अधिक स्थायी होता है। इस विधि में अचेतन की गहराइयों में जाकर उसे कुरेदा जाता है तथा संवेगात्मक कठिनाइयों एवं मानसिक उलझनों के कारण का पता लगाया जाता है, इसलिए इसे गहरी चिकित्सा भी कहा जाता है।

b) इस विधि द्वारा मानसिक रोग के कारण का पहले पता लगा लिया जाता है और बाद में उसका उपचार उसी के अनुसार किया जाता है। इसी कारण यह विधि चिकित्सा की अन्य विधियों से उत्तम मानी जाती है।

c) यह प्रविधि हिस्ट्रीरिया, विषाद, अन्तर्मुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गया है।

दोष:-

a) इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है। समय अधिक लगने के कारण रोगी चिकित्सा से उबने लगता है और उसकी कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ़ने लगती है।

b) इस उपचार विधि में समय अधिक लगने से विश्लेषक अधिक रोगियों का उपचार चाह कर भी नहीं कर पाता है।

c) यह विधि खर्चीली भी काफी अधिक है।

d) इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढ़े लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस तरह के लोग चिकित्सा के दौरान उतना सहयोग नहीं कर पाते है जितनी जरूरत पड़ती है।

e) इसके लिए विश्लेषक को कुशल एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है। सभी तरह के चिकित्सक इस विधि का संचालन सही-सही ढंग से नहीं कर पाते है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा को .....भी कहा जाता है।
2. मनोचिकित्सा .....के उपचार की विधि है।
3. मनोवश्लेषणवादी चिकित्सा का प्रतिवादन.....ने किया।
4. व्यवहारात्मक माँडल में व्यवहार के निर्धारण में .....पर बल डाला जाता है।
5. मैसलों ने.....उपागम का प्रतिपादन किया|

5.6 सारांश

1. मनोपचार या मनश्चिकित्सा एक उपचार पद्धति है। जिसमें मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ्य व्यक्तियों का उपचार किया जाता है।

2. मनोपचार के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू होते है। 1. सहभागी 2. चिकित्सकीय सम्बन्ध 3. मनचिकित्सा की प्रविधि

3. नैदानिक मनोविज्ञान में कई तरह के माँडल है। जिनमें प्रमुख रूप से चार है 1. मनोगत्यात्मक माँडल 2. व्यवहारात्मक माँडल या अधिगम सिद्धान्त माँडल 3. परिघटनात्मक माँडल 4. अन्तवैयक्तिक माँडल

4. प्रत्येक माँडल द्वारा नैदानिक समस्या के स्परूप को समझने तथा उसका उपचार करने में विशेष योगदान दिया जाता है।

5. मनोगत्यात्मक माँडल के अनुसार सामान्य तथा असामान्य व्यवहार दोनों की उत्पत्ति मन के भीतर होने वाले मानसिक संघर्षो, दमित इच्छाओं तथा आवेगों द्वारा होती है।

6. व्यवहारात्मक माँडल की मान्यता ये है कि मानव व्यवहार अधिगम (सीखना) द्वारा प्रभावित होता है। जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होता है।

7. परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार व्यक्ति अपने वातावरण में उपस्थित उद्दिपकों का जिस तरह से प्रत्यक्षण करता है। उसका व्यवहार उसी तरह का होता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति वातावरण के उद्दीपकों का प्रत्यक्षण अपने-अपने ढंग से करता है।
8. अन्तवैयक्तिक मॉडल के अनुसार जब व्यक्ति की सामाजिक अंतक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है। अर्थात् जब उसके समाज के खास व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध असंतोषजनक हो जाते है तो उसमें असमायोजित व्यवहार उत्पन्न हो जाता है।
9. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का प्रतिपादन फ्राइड ने किया। इसमें व्यक्ति की दमित इच्छाओं, चिन्तन एवं डर को अचेतन स्तर से बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित की जाती है ।

5.7 शब्दावली

1. स्नायु विकृति या चिन्ता विकृति - साधारण मानसिक विकृति है। इससे पिड़ित व्यक्ति का मुख्य लक्षण चिन्ता है। वह चिन्ता से ग्रस्त रहता है परन्तु उसका कारण उसे पता नहीं रहता है।
2. हिस्टीरिया - एक मानसिक रोग है। इससे व्यक्ति एक या अधिक शारीरिक लक्षणों से पीड़ित होता है। परन्तु इसके कायिक आधार नहीं पाये जा सकते है।
3. रक्षा प्रक्रम - ये मानसिक प्रक्रियाये है। जब इस (मनोरचनायें) तथा पराहम् की खीचतान के कारण व्यक्ति में मानसिक संघर्ष उत्पन्न होते है, तब इस मनोरचनाओं के माध्यम से इगो अपने आपको चिन्ता या तनाव से बचाने का प्रयास करता है।
4. स्वाभाविक उद्दीपक - जो उद्दीपक बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है। जैसे भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक है।
5. अनुबन्धिक उद्दीपक - एक ऐसा उद्दीपक जिसे स्वाभाविक उद्दीपक के साथ लगातार कुछ प्रयासों तक दिया जाता है, तो वह स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया करने लगता है।
6. अनुबन्धित उद्दीपक - एक ऐसा उद्दीपक जिसे स्वाभाविक उद्दीपक के साथ लगातार कुछ प्रयासो तक दिया जाता है तो वह स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया करने लगता है। जैसे- भोजन के साथ यदि घंटी को लगातार बजाया जाये ।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मनोगत्यात्मक चिकित्सा
2. कुसमायोजी एवं मानसिक विकृतियों
3. फ्रायड
4. पर्यावरणीय कारको
5. मानवतावादी

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास
2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोचिकित्सा से क्या समझते है? इसके उद्देश्यों एवं चरणों का वर्णन करियें।
2. मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ बताइये। इस चिकित्सा के चरणों एवं गुण दोषों की व्याख्या करियें।
3. नैदानिक हस्तक्षेण के माँडलों से क्या तात्पर्य है? इनके विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करिये ।

इकाई 6. व्यवहार चिकित्सा: क्रमबद्ध असंवेदीकरण, संज्ञानात्मक-व्यवहार, रोगी-केन्द्रित, गेस्टाल्ट एवं अस्तित्ववादी चिकित्सा (Behavior Therapy: Systematic Desensitization, Cognitive Behavior, Client-Centered, Gestalt and Existential Therapy)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 व्यवहार चिकित्सा
6.3.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण
6.3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा
6.3.2.1 रैसनल इमोटिव चिकित्सा
6.3.2.2 बैक की संज्ञानात्मक चिकित्सा
6.3.2.3 तनाव टीका चिकित्सा
6.3.2.4 बहुआयामी चिकित्सा
6.4 मानवतावदी-अनुभवात्मक चिकित्सा
6.4.1. क्लांयट या रोगी केन्द्रित चिकित्सा
6.4.2 गैस्टाल्ट चिकित्सा
6.4.3 अस्तित्ववादी
6.5. सारांश
6.6. शब्दावली
6.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9. निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

व्यवहार चिकित्सा नैदानिक मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली एक लोकप्रिय पद्धति है। ये रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलोव के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति आधारभूत मान्यता है कि असामान्य व्यवहार का कारण व्यक्ति के द्वारा अपेक्षित समायोजनपूर्ण प्रतिक्रियाओं को न सीख पाना है।

इस चिकित्सा पद्वति में रोगी को सही प्रकार की प्रतिक्रियाओं को सिखाया जाता है। जिससे वह छूटी हुई सही प्रतिक्रियाओं को सीख सके। इसमें रोगी के उपचार के लिये उसके लक्षणों को दूर करने का सीधा प्रयास किया जाता है। इसके द्वारा असमायोजित (गलत) आदतों को कमजोर किया जाता है और उनको त्याग दिया जाता है।

इसमें समायोजित (सही) आदतों की शुरूआत की जाती है तथा उन्हें मजबूत किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया के पीछे अनुबन्धन की विधि को अपनाया जाता है।

संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर उसे चिकित्सा दी जाती है। रोगी के गलत संज्ञान या चिंतन को दूर करके उसकी जगह पर सही चिंतन को विकसित किया जाता है ताकि वो समायोजी व्यवहार कर सके।

व्यवहार चिकित्सा को व्यवहार परिमार्जन भी कहते है अर्थात् इसमें रोगी का उपचार उसके व्यवहार में परिवर्तन करके किया जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

a) व्यवहार चिकित्सा का अध्ययन करना।

b) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकारों का अध्ययन करना ।

6.3 व्यवहार चिकित्सा -

इस चिकित्सा के अनुसार अतीत में (पहले) सीखी गई असमायोजित अनुक्रियाओं को भुलाया जा सकता है या सुधारा जा सकता है। व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य ऐसी समायोजी अनुकूलित अनुक्रियायें उत्पन्न करना है जो रोगी की कुसमायोजी अनुक्रियाओं का स्थान ले सके। व्यवहारवादी चिकित्सक विशेष रूप से नये अधिगम (सीखना) पर बल देते है, ताकि रोगी कुसमायोजी अनुक्रियाओं को भूल जायें और नई समायोजी अनुक्रियायें सीख लें।

व्यवहार चिकित्सा में कुसमायोजित व्यवहार के जगह पर समायोजित व्यवहार को मजबूत करने की कोशिश की जाती है ताकि व्यक्ति सामान्य ढंग से जीवन निर्वाह करें। कुसमायोजित व्यक्ति वैसे व्यक्ति को कहा जाता है जो जिन्दगी की समस्याओं से निबटने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य किसी कारणवश नहीं विकसित कर पाये या ना सीख पाये।

व्यवहार चिकित्सा के उद्देश्य:-

a) व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति द्वारा किये गए असमायोजित व्यवहार को बदलना होता है।

b) व्यवहार चिकित्सा में रोगी के वर्तमान समस्याओं पर बल डाला जाता है न कि उसके बचपन के अनुभव पर।

व्यवहार चिकित्सा पद्धति में अनेक निम्नलिखित प्रतिक्रियाओं का उपयोग किया जाता है-

1. **सरल क्लासिकल अनुबन्धन:-** इसमें दो असम्बन्धित उत्तेजनाओं को जोड़ने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण- जिन बच्चों को नींद में पेशाब करने की आदत हो जाती है, उनके लिये यदि उसी वक्त बिजली का हल्का झटका घंटी के साथ दिया जाता है। लगातार ऐसा करने से धीरे-धीरे उसकी बिस्तर गीला करने की आदत छूट जाती है। इसमें उसके मूत्र त्याग का सम्बन्ध उस घंटी के साथ जुड़ जाता है।

2. आपरेन्ट अनुबन्धन:- इसमें व्यक्ति के सामने कई प्रलोभन (लालच) प्रस्तुत किये जाते है। जिससे वह सही प्रतिक्रियाओं को सीख कर उन्हें मजबूत कर सके। उदाहरणः- गम्भीर मानसिक रोगियों पर एक अध्ययन किया गया। जिसमें ऐसे रोगी थे जो बिना किसी की सहायता के भोजन नहीं कर पाते थे। उन्हें स्वयं खाना खाने की आदत के लिए भोजन के समय नर्स सूचना देती थी कि ''भोजन तैयार है'' और साथ ही भोजन कक्ष का दरवाजा खोल दिया जाता था, 30 मिनट के बाद दरवाजा बन्द कर दिया जाता है, उसके बाद कोई रोगी खाना नहीं खा सकता था। इन रोगियों को बार-बार याद दिलाने और जबरदस्ती भोजन के लिये ले जाने वाला व्यवहार छोड दिया गयाय धीरे-धीरे भोजन कक्ष का दरवाजा केवल 20 मिनट, फिर 10 मिनट और 5 मिनट के लिए खुला रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि केवल 3-4 दिन में ही सभी रोगी स्वयं जाकर भोजन करने लगे।

3. विरक्ति:-इसमें किसी दण्ड के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में सुधार किया जाता है। इसमें व्यक्ति का व्यवहार किसी पुरस्कार से नहीं बल्कि दण्ड या कष्ट से सम्बन्धित हो जाता है।

उदाहरणः यदि किसी बच्चे में मिट्टी खाने की आदत पड़ जाती है तो उसकी मिट्टि में मिर्च या कोई कड़वी वस्तु मिला दी जाती है। जिससे वह धीरे-धीरे अपनी मिट्टि खाने की आदत छोड़ देता है।

4. आदान प्रदान अवरोधन उपचार पद्धति:-इस चिकित्सा पद्धति के प्रतिपादक जे. ओल्प है। उनके अनुसार रोगी द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करने का निश्चय व विश्राम के माध्यम से रोग को दूर किया जा सकता है। इस पद्धति में रोगी के सामने समायोजित प्रतिक्रिया की ठीक विरोधी प्रतिक्रिया को उपस्थित किया जाता है। जिससे वह असमायोजित प्रतिक्रिया को पूरा ही न कर पाये।

उदाहरण:- जोन्स (1924) ने एक प्रयोग किया है जिसमें एक बच्चा जिसे जानवरों से डर लगता था, उसके सामने भोजन करते समय एक जानवर को बन्द पिजडें में रखकर लाया जाता था। धीरे-धीरे उसे उस बच्चे के नजदीक लाया गया। कुछ दिनों के बाद बच्चे का भय उस जानवर के प्रति खत्म हो गया।

6.3.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण

व्यवहार चिकित्सा की यह विधि सबसे लोकप्रिय एवं महत्तवपूर्ण विधि है जिसका प्रतिपादन **साल्टर (1949)** तथा **ओल्प (1958)** द्वारा किया गया। इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब रोगी में परिस्थिति के प्रति ठीक तरह से अनुक्रिया करने की क्षमता होती है। क्रमबद्ध असंवेदीकरण मुख्य रूप से चिंता कम करने की एक प्रविधि है जो इस नियम पर आधारित है कि एक ही समय में व्यक्ति चिंता तथा विश्राम दोनों की अवस्था में एक साथ नहीं हो सकता है। इसमें रोगी को पहले विश्राम की अवस्था में होने का प्रशिक्षण दिया जाता है और जब वह इस विश्राम की अवस्था में होता है, तो उसमें चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। अन्त में, रोगी चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदित हो जाता है क्योंकि रोगी उन्हें विश्राम की अवस्था में उन्हें ग्रहण करने का अनुभव प्राप्त कर चुका होता है।

क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करने के निम्नलिखित चरण हैः-

1. आराम करने का प्रशिक्षण -इस अवस्था में रोगी को विश्राम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह कार्य चिकित्सा के पहले 5-6 सत्रों में पूरा किया जाता है। इस सत्रों में रोगी को अपनी मांशपेशियों को संकुचित

करने और अचानक उन्हें ढीला करने का प्रशिक्षण तब तक दिया जाता है जब तक कि रोगी पूरी तरह से विश्राम में नहीं आ जाता है। क्रमिक विश्राम प्रशिक्षण को जैकोवसन द्वारा 1938 में प्रतिपादित किया गया था। इस विधि में विभिन्न तरह के अभ्यासों के माध्यम से रोगी को मानसिक एवं शारीरिक रूप से आराम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

2. **चिंता सूची का निर्माण -इस** अवस्था में चिकित्सक उन उद्दीपकों की एक सूची तैयार करता है जिनसे रोगी में चिंता उत्पन्न होती है। इस सूची में चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते हुए क्रम में रखा जाता है। अर्थात् सबसे कम चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक को सबसे नीचे, उससे अधिक चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को उससे ऊपर और इसी तरह क्रमिक रूप से एक के बाद एक करते हुए सबसे अधिक चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को सबसे ऊपर में रखा जाता है।

3. **असंवेदीकरण की कार्य-विधि-** इसमें रोगी को आराम से आँख बन्द करके कुर्सी पर बैठा दिया जाता है। इसके बाद उसके सामने चिकित्सक चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का वर्णन करता है और रोगी से कहा जाता है कि वह उस परिस्थिति में अपने आपको रखकर उसकी कल्पना करे ! उसे बताया जाता है कि उस परिस्थिति की कल्पना करके यदि उसे डर लगने लगे तो वह अपना दायां हाथ उठाये ! यदि रोगी हाथ उठाता है तो चिकित्सक उसे उस परिस्थिति की कल्पना बन्द करने का आदेश देता है। इससे उसमें शारीरिक शिथिलता आ जाती है। थोडी देर बाद फिर उससे थोड़ा बढ़ी हुई चिन्ताजनक परिस्थिति की कल्पना करने को कहा जाता है तो वह चिन्ता उत्पन्न करने वाली स्थिति के प्रति असंवेदीकरण हो जाता है। चिकित्सक तब तक अपने सत्र को जारी रखता है जब तक रोगी पूरी तरह से उस परिस्थिति में शान्त रहने में सफल नहीं हो जाता है। जिससे सबसे अधिक चिन्ता उसमें उत्पन्न हो जाती है।

उदाहरणः यदि किसी व्यक्ति को पानी से डर लगता है तो चिकित्सक सबसे पहले उसे एक आरामकुर्सी में बैठाकर उससे 10-15 सेकेण्ड तक ये कल्पना करने को कहता है कि वह पानी में है! उसे कई दिनों तक इसी तरह की कल्पना करायी जाती है। फिर धीरे-धीरे समय को बढ़ा दिया जाता है! धीरे-धीरे उसके सामने चिन्ता स्तर को भी बढा दिया जाता है अर्थात् उससे कहा जाता है कि वो कल्पना करें कि वह डूब रहा है! यदि इस परिस्थिति में उसे डर लगता है तो उसे फिर से पुरानी स्थिति में ले आते है। इस तरह कई सत्र करवाये जाते है और धीरे-धीरे वह पानी के प्रति असंवेदनशील बन जाता है और उसका डर खत्म हो जाता है

।

असंवेदीकरण प्रविधि के दो मुख्य रूप है-

1. **सामूहिक असंवेदीकरण** -इस प्रारूप में कई रोगियों को जिनके लक्षण लगभग समान होते है एक साथ बिठाकर चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितयों या उद्दीपकों का एक सामान्य बढ़ते क्रम में तैयार किया जाता है। पदानुक्रम में ऊपर की ओर बढ़ना उस बिन्दु पर रोक दिया जाता है जब उन रोगियों में से सबसे कम चिन्तित रोगी को सफलता मिल जाती है।

2. **इन विवो असंवेदीकरण-** यह एक बहुत लोकप्रिय प्रारूप है जिसमें जीवन की वास्तविक परिस्थिति में विभिन्न तरह के चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से क्रमिक ढंग से रोगी का सामना कराया जाता है। इसमें मांशपेशियों को नरम करने का प्रशिक्षण चिकित्सक देते है जो रोगी को विभिन्न तरह के वातावरण में ले जाकर

चिंता कम कराने का कार्य करते है। इस प्रारूप का उपयोग दुर्भीति (डर) के गंभीर रोगी के उपचार में काफी किया है।

गुण -

1. क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रविधि एक लाभदायक चिकित्सीय विधि है। इस प्रविधि का उपयोग उन चिन्ता समस्याओं को दूर करने के लिए किया जाता है जिनमें चिन्ता करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक स्पष्ट होता है। इसलिए दुर्भीति के रोगियों के उपचार में इस विधि को काफी सफलता मिली है ओल्प ने 91 प्रतिशत रोगियों को इस विधि द्वारा रोगमुक्त किया !
2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण का उपयोग उस परिस्थति में भी किया जाता है जहाँ व्यक्तियों में चिन्ता स्पष्ट न होकर छिपी होती है। जैसे व्यक्ति को ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होना, खराब स्मृति, बोलने में धाराप्रवाहिता की कमी, लैंगिक अनिच्छा, पेशीय कार्यो की असंगतता आदि है। इन लक्षणों के उपचार में क्रमबद्ध असंवेदीकरण का उपयोग किया जाता है।

दोष-

1. सभी तरह के रोगियों की चिन्ताओं तथा डर का उपचार नहीं किया जा सकता है।
2. ऐसी रोगी जिन्हें विश्राम की अवस्था में आने में काफी कठिनाई महसूस होती है।
3. ऐसे रोगी जो चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के बारे में वास्तविक सूचना न देकर गलत सूचना देते है।
4. ऐसे रोगी जिनकी कल्पना शक्ति कमजोर होती है।

6.3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा

व्यवहार चिकित्सा में रोगी का उपचार उसके व्यवहार में परिवर्तन करके किया जाता है परन्तु रोगी के आंतरिक घटनाओं जैसे उसके चिंतन, प्रत्यक्षण, मूल्यांकन तथा आत्म-कथनों आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगी की इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा की जाती है। यह एक ऐसी व्यवहार चिकित्सा है जिसमें मानसिक रोग का कारण संज्ञान या चिन्तन माना जाता है। इसमें रोगी गलत चिन्तन तथा विश्वास का त्याग करके उसकी जगह पर उपयुक्त चिन्तन एवं विश्वास अपनाता है और समायोजी व्यवहार करने में सफल हो पाता है।

स्वरूप -

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में असामान्य या कुसमायोजित व्यवहार का कारण गलत संज्ञान या चिंतन माना जाता है।

1. इस चिकित्सा में रोगी के इस गलत संज्ञान या चितन को दूर करके उसके जगह पर सही संज्ञान या चिंतन विकसित करने की कोशिश की जाती है। जिसे संज्ञानात्मक पुनर्संरचना कहा जाता है।

लक्ष्य

1. रोगी के लक्षणों को दूर करके उन्हें समस्या समाधान में मदद करना।

2. रोगी में कुछ इस ढंग की युक्तियाँ विकसित की जाती है, जिसके सहारे वह अपने भविष्य की समस्याओं से निबट सके।
3. रोगी को इस ढंग से मदद करना ताकि वह अपने अतार्किक तथा आत्म-हीनता की सोच से हटकर तार्किक तथा धनात्मक विचारों पर अपना ध्यान लगा सके।

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकार

1. रैसनल-इमोटिव चिकित्सा
2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा
3. तनाव-टीका चिकित्सा
4. बहुआयामी चिकित्सा

6.3.2.1 रैसनल-इमोटिव चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन एल्वर्ट इल्लिस (1958, 1973,1975) द्वारा किया गया। इसे संक्षेप में RET कहा जाता है। इस चिकित्सा विधि की पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी का सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण आंतरिक एवं अतर्कसंगत विचार एवं विश्वास होते है। यह विश्वास तथा विचार व्यक्ति में होता है तथा जो उन्हें यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि उनकी खुशी के लिए उनकी इच्छाओं को पूरा करना जरूरी है। यहाँ चिकित्सक रोगी के ऐसे अविवेकपूर्ण व्यवहार तथा विश्वासों की खोजबीन करता है, चिकित्सक रोगी के मन में ऐसे विश्वासों को हटाकर उनमें नया विश्वास तथा आशा विकसित करता है ताकि वह फिर से समायोजित या अनुकूलित व्यवहार करने लगे। इस तरह से चिकित्सक रोगी के विश्वास तथा आत्म कथनों को बदलकर फिर से बनाने का प्रयास करता है।

1. पहली विधि तो यह है जिसमें रोगी के सामने विवेकपूर्ण तथ्य लाये जाते है और उसके गलत विश्वासों और नकारात्मक सोच को बदला जाता है

2. दूसरी विधि वह है कि जिसमें चिकित्सक रोगी को कुछ सजृनात्मक कार्य करने को देता है जिससे उसके व्यवहार एवं चिन्तन में परिवर्तन आता है। जैसे-चिकित्सक रोगी को गृह-कार्य के रूप में कुछ कार्य या अभ्यास करने को दे देता है। अपने गलत विश्वास के विरूद्ध कार्य करते समय रोगी को मन-ही-मन यह सोचने के लिए कहा जाता है,'' मैं सचमुच में एक अच्छा काम कर रहा हूँ।''

गुण:-

1. RET अत्यधिक क्रोध, विषाद तथा समाज-विरोधी व्यवहार को कम करने में प्रभावी होता है।

II. RET द्वारा उन लोगों की भी मदद की जाती है जो सांवेगिक रूप से बीमार न होकर स्वस्थ है परन्तु दिन-प्रतिदिन की समायोजन में कुछ सामान्य कठिनाई होती है।

दोषः-

1. सामाजिक चिन्ता को कम करने में RET अन्य दूसरी प्रविधि जैसे-क्रमबद्ध असंवेदीकरण की तुलना में कम लाभदायक है।

6.3.2.2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन ए0टी0 बेक (1979) द्वारा विषादी रोगियों के चिन्ता विकृतियों तथा दुर्भीति के उपचार के लिए किया गया था। बेक की इस चिकित्सा पद्धति की पूर्वकल्पना यह है कि जब रोगी का स्वयं अपने बारे में, अपने वातावरण के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में अतार्किक चिन्तन होता है तो विषाद जैसी समस्या उत्पन्न होती है। इस तरह की अतार्किक चिन्तन रोगी को अपने बारे में, अपनी दुनिया के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में निराशवादी ढंग से सोचने के लिए मजबूर करता है। बेक ने इन तीन तरह के अतार्किक एव गलत चिन्तन को **'संज्ञानात्मक त्रिक'** कहा है।

विषादी रोगियों में विकृत चिन्तन के कई प्रकारों का वर्णन किया है, जिनमें निम्नांकित प्रमुख है।

1. मनचाहा अनुमान- इसमें रोगी अपर्याप्त या अतर्कसंगत सूचनाओं के आधार पर अपने बारे में अनुमान लगाता है। जैसे-यदि किसी व्यक्ति को यह विचार आता है कि वह बेकार है क्योंकि उसे किसी शादी में नहीं बुलाया गया तो यह मनचाहा अनुमान का उदाहरण होगा।

2. आवर्धन- इसमें रोगी किसी छोटी घटना को बढ़ा-चढ़ा कर सोचता है और बताता है। जैसे-यदि कोई व्यक्ति यह सोचता है कि उसके द्वारा बनाया गया मकान बेकार हो गया क्योंकि उसमें पूजाघर के लिए कोई जगह नहीं बच सका, तो इस तरह का चिंतन आवर्धन का उदाहरण होगा।

3. न्यूनीकरण- इसमें रोगी बडी घटना को बहुत छोटा कर उसके बारे में विकृत ढंग से सोचता है। यह आवर्धन के विपरीत है। जैसे-यदि कोई छात्र यह सोचता है कि वह केवल भाग्य के भरोसे परीक्षा में सफल हो पाया है जबकि वह मूर्ख एवं बुद्धिहीन है, तो यह न्यूनीकरण का उदाहरण होगा।

इस चिकित्सा में रोगी को कुछ ऐसे व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें वे अपने बारे में कुछ ऐसी सूचना इकठ्ठा कर सके जिससे वे स्वयं ही अपने गलत विश्वास को हटा सके। संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के निम्न उपायों पर बल डाला जाता है।

1. संज्ञान, संवेग तथा व्यवहार के बीच संबंधों की पहचान करना।
2. गलत विश्वासों एवं विकृतियों मे परख करना।
3. कुछ 'गृह-कार्यो' को करना जिससे रोगी में निराशावादी सोच नही आ पाती और वह नये चिंतन उपायों का रिहर्सल करता है।

6.3.2.3. तनाव-टीका चिकित्सा

यह चिकित्सा विधि एक तरह का आत्म-निर्देशन विधि है। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी की समस्या का मूल कारण उसके व्यर्थ या बेकार के विश्वास होते है जो व्यक्ति में नकारात्मक सांवेगिक अवस्था एवं कुसमायोजित व्यवहार उत्पन्न करते है। इस चिकित्सा विधि में यह निश्चित किया जाता है कि रोगी किन-किन तरह

के तनावों से ग्रस्त रहा है। उसके संज्ञान में किस तरह से परिवर्तन लाया जा सकता है ताकि वह इन तनावों के साथ ठीक ढंग से समायोजन करके चिन्तामुक्त हो सके।

चरणः इस चिकित्सा विधि के निम्नलिखित चरण हैः-

1. **तैयारी की अवस्था -** इस अवस्था में चिकित्सक तथा रोगी एक साथ मिलकर समस्या या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों या परिस्थितियों का पता लगाते है चिकित्सक एवं रोगी दोनों मिलकर कुछ ऐसे नये आत्म-कथन तैयार करते है जो रोगी के लिए अधिक समायोजी साबित होता है
2. **अभ्यास की अवस्था -** इस अवस्था में रोगी समायोजित आत्म-कथनों को सीखता है तथा तनाव उत्पन्न करने वाली काल्पनिक परिस्थिति मे ही अभ्यास करता है।
3. **उपयोग एवं अभ्यास की अवस्था -**इस अवस्था को इस ढंग से व्यवस्थित किया जाता है कि रोगी को पहले हल्का-फुल्का तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है और जैसे-जैसे उसमें आत्म-विश्वास आता जाता है, उसे गंभीर रूप से उत्पन्न करने वाले तनाव में रखकर उसमें आत्म-विश्वास एवं नये-नये समायोजी विश्वास उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है।

तनाव टीका चिकित्सा का सफलतापूर्वक उपयोग कई तरह की नैदानिक समस्याओं के उपचार में किया गया है। जैसे-मैकेनवाम (1975) ने इस विधि का उपयोग चिंता के उपचार मेंय टर्क (1974) ने इसका उपयोग दर्द निवारण में उपचार में सफलतापूर्वक किया है।

6.3.2.4. बहुआयामी चिकित्सा

इस तरह के संज्ञानात्मक-व्यवहारपरक चिकित्सा पद्धति का विकास **लेजारस (1973,1989)** द्वारा किया गया है। इस चिकित्सा पद्धति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक कई तरह की चिकित्सीय पद्धतियों को एक साथ मिलाकर रोगी का उपचार करते है। लेजारस के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में निम्नलिखित सात विमायें होती है।

1. व्यवहार
2. भावनात्मक प्रक्रियाएँ
3. संवेदन
4. प्रतिमा
5. संज्ञान
6. अन्तर्वैयक्तिक संबंध
7. औषध

इन सातों का संक्षेप में लेजारस ने **BASIC ID** के रूप में बताया है। लेजारस के इस चिकित्सा पद्धति की मान्यता यह है कि एक चिकित्सक को इन सातों या उनमें से कुछ क्षेत्रों की समस्याओं की पहचान करके उसी के अनुसार चिकित्सा पद्धति का उपयोग करना चाहिए। सबसे पहले चिकित्सक इस समस्याओं की पहचान करता है और उन्हें एक क्रम में व्यवस्थित करता है। उसके बाद इनके समाधान के लिये चिकित्सा विधि को अपनाता है।

लाभ-

a) बहुआयामी चिकित्सा का एक प्रमुख लाभ यह है कि इसमें रोगी की समस्याओं की पहचान अलग-अलग विमाओं के आधार पर की जाती है और उसी के अनुरूप चिकित्सा की जाती है। इसलिये इससे रोगी की समस्याओं का उपचार पूरी तरह से सम्भव हो पाता है।

b) इससे रोगी पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उसमें समायोजी लक्षण तेजी से विकसित होते है।

6.4 मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा -

मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा एक सूझ केन्द्रित चिकित्सा है। इस चिकित्सा पद्धति में व्यक्ति को एक लगातार आगे बढ़ने वाला प्राणी माना जाता है। इसके अनुसार व्यक्ति अपने भीतर छिपी अन्तःशक्ति का अनुभव करके अपने व्यवहार का मार्गनिर्देशन भी करते रहता है। जब उसकी इस समझ में गड़बड़ी उत्पन्न होती है तो व्यक्ति में असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है।

उद्देश्य-

a) इस चिकित्सा में क्लायंट या रोगी को एक व्यक्ति के रूप में पहचानने व आगे बढ़ने पर बल डाला जाता है। इसमें चिकित्सक रोगी को उसके अन्दर की शक्ति को पहचानने पर बल देते है एवं उस तक पहुँचने में उसे मदद करते है।

b) इस चिकित्सा में क्लायंट तथा चिकित्सक के बीच का संबंध एक मुख्य कारक होता है जिसके सहारे धीरे-धीरे रोगी में सुधार होता है। यह एक वास्तविक आपसी संबंध होता है

c) क्लायंट के भविष्य के लिए उसके बीते अनुभव महत्वपूर्ण नहीं होते है केवल वर्तमान को ध्यान में रखा जाता है।

d) अधिकतर क्लायंट सामान्य लोगों के ही समान होते है। परन्तु वातावरण के प्रति उनका प्रत्यक्षण (नजरिया) भिन्न होता है और वे वैसा ही व्यवहार करते है। चिकित्सक वातावरण को रोगी की नजरों से देखकर ही उनकी समस्याओं को समझने की और समाधान का प्रयास करते है।

मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा के अर्न्तगत निम्नलिखित तीन चिकित्सा पद्धतियॉ है-

a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा

b) गेस्टाल्ट चिकित्सा

c) अस्तित्ववादी चिकित्सा

6.4.1. क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा

इस चिकित्सा का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स ने 1940 में किया था। इसे ''**व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा**'' या ''**अनिर्देशित चिकित्सा**'' भी कहा जाता है।

रोजर्स के अनुसार

a) स्वस्थ्य लोग अपने व्यहार से पूरी तरह अवगत होते है।

b) स्वस्थ्य लोग जन्मजात रूप से समायोजित एवं प्रभावी होते है। वे तभी असमायोजित एवं अप्रभावी हो जाते है जब उनकें सीखने में कहीं गलती हो जाती है।

c) स्वस्थ्य लोगों का जीवन उद्देश्यपूर्ण तथा लक्ष्य निर्देशित होता है।

d) चिकित्सक को क्लायंट को स्वतंत्र होकर निर्णय लेने के लिए तैयार करना चाहिए।

चिकित्सक के गुण:-

अगर चिकित्सक द्वारा सही एवं ठीक परिस्थिति या अवस्था उत्पन्न की जाती है, तब क्लायंट में परिवर्तन होगा। रोजर्स के इस चिकित्सा पद्धति के दौरान ऐसी छह विमाए है जिनमें चिकित्सा के वक्त परिवर्तन होते है।

a) **आत्मअभिज्ञा में वृद्धि-** इसमें क्लायंट अपनी वर्तमान अनुभूतियों पर ध्यान केन्द्रित करता है और उन भावों को समझने व पहचानने लगता है जिसका उसे पहले ज्ञान नहीं था। इससे क्लायंट में आत्म-ज्ञान में काफी बढोत्तरी होती है।

b) **स्वयं को स्वीकार करना-** रोजर्स की इस चिकित्सा के दौरान धीरे-धीरे क्लायंट अपने भावों एवं व्यवहारों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना अधिक शुरू कर देता है तथा अन्य लोगों तथा परिस्थिति पर दोष मढ़ना धीरे-धीरे कम कर देता है।

c) **सोच में बदलाव-** इस चिकित्सा पद्धति में रोगी की पुरानी सोच में बदलाव लाकर नई सोच विकसित की जाती है। जब व्यक्ति वातावरण को एक निश्चित तरीके से देखता है, तो इससे समस्या उत्पन्न होती है इसमें चिकित्सक द्वारा रोगी को उसकी परिस्थिति के अनुसार देखने व सोचने को कहा जाता है।

d) **आराम में वृद्धि-** रोजर्स द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में जैसे-जैसे चिकित्सीय बढता जाता है, क्लायंट को अपने अन्दर बदलाव दिखाई देता है और वह आराम या सुख-चैन का अनुभव करता है।

e) **आत्म-निर्भरता में वृद्धि-** जैसे जैसे चिकित्सा सत्र आगे बढ़ता है, क्लायंट दूसरों पर निर्भरता कम होने लगती है तथा उसे अपनी क्षमताओं पर विश्वास होने लगता है।

f) **क्लायंट के व्यवहारों में परिवर्तन-** क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट के व्यवहारों में काफी परिवर्तन आ जाते है। वह स्वयं को पहचान कर, अपने बारे में सोचने लगता है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में तनाव की कमी देखी जाती है।

गुण:-

1. क्लांयट केन्द्रित चिकित्सा पद्धति सरल होती है। इसमें क्लायंट या रोगी की ही व्यक्तिगत पहल रहती है और उसमें सुधार आने लगता है।
2. साधारण कुसमायोजित व्यवहार के लिए नैदानिक मनोविज्ञानिकों द्वारा एक उत्तम प्रविधि मानी गयी है।

दोष:-

a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा गंभीर मानसिक रोगों के लिए ठीक नहीं होती है। उनमें व्यक्तिगत पहल एवं स्वयं को पहचानने की क्षमता नहीं होती है।

b) इसमें क्लायंट की समस्याओं का समाधान गहराई तक नही हो पाता है। इस कारण क्लायंट के रोग के लक्षण को फिर से लौट आने की संभावना होती है।

6.4.2. गेस्टाल्ट चिकित्सा

गेस्टाल्ट चिकित्सा का प्रतिपादन **फ्रेडेरिक एस0 (फ्रिज) पर्ल्स (1967, 1970)** द्वारा किया गया है। 'गेस्टालट' पद का अर्थ होता है-सम्पूर्ण (whole)। रोजर्स के समान पर्ल्स का भी यह विश्वास था कि व्यक्ति में एक जन्मजात अच्छाई होती है और उसकी इस प्रकृति को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाना चाहिए। जब व्यक्ति किसी कारण से इस जन्मजात गुण को अभिव्यक्त नही कर पाता तो वह कुंठित हो जाता है, जिसके कारण अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ होने लगती है।

लक्ष्य -

गेस्टाल्ट चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को आगे बढ़ने की प्रक्रिया को फिर से चालू करना होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति दो तरह से की जाती है।

a) रोगी अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं को समझे व स्वीकार करे।

b) इसमें व्यक्ति द्वारा उन्हें दूसरे लोगो से लिये गये अनुभवों तथा मूल्यों को बताया जाता है जो कि उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बन जाते है।

गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान अनुभवों पर बल डाला जाता है न कि दमित आवेगों या स्मृतियों की प्राप्ति पर तथा भविष्य के बारे में अनुमान लगाने पर।

पर्ल्स के अनुसार रोगी के वास्तविक जिन्दगी को खुशहाल बनाने एवं चिकित्सा में विकास के लिए यह आवश्यक है कि रोगी को वर्तमान की अनुभूतियों के बारे में जानकारी बढे। वे अपने कार्यो के उत्तरदायित्व को समझें।

गेस्टाल्ट चिकित्सा के तीन निम्नलिखित संप्रत्यय है -

a) वर्तमान के अनुभव- गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान महत्तवपूर्ण होता है इस चिकित्सा का उद्देश्य इसी वर्तमान रोगियों के विश्वास को मजबूत करना होता है। चिकित्सा के दौरान चिकित्सक भरपूर यह कोशिश करता है कि रोगी का ध्यान उनके वर्तमान भावों, चिन्तनों एवं अनुभवों पर रहे।

b) जानकारी- जानकारी से तात्पर्य अनुभूतियों को स्वीकार करने की क्षमता से होती है।

c) उत्तरदायित्व- गेस्टाल्ट चिकित्सा का यह एक महत्तवपूर्ण संप्रत्यय है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रियाओं एवं भावों की जिम्मेदारी स्वयं लेता है।

लेविटस्काई एवं पर्ल्स (1970) के अनुसार गेस्टाल्ट चिकित्सा के प्रमुख नियम इस प्रकार है।

a) रोगी से केवल वर्तमान काल में बातचीत करने के लिए कहा जाता है। पुरानी यादों तथा भविष्य को लेकर कोई बातचीत नहीं की जाती है।

b) बातचीत किसी के बारे में नहीं बल्कि समानान्तर स्तर पर की जाती है।

c) रोगी में उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) का भाव उत्पन्न करने के लिए उसे ''मै' शब्द का प्रयोग अधिक-से-अधिक करने के लिए कहा जाता है।

d) रोगी से लगातार केवल वर्तमान अनुभवों पर ध्यान लगाने को कहा जाता है।

e) कोई गप-शप या इधर-उधर की बात नहीं की जाती है।

f) यह कोशिश की जाती है कि रोगी कोई प्रश्न न करें क्योंकि प्रश्नों के माध्यम से वह अपने पुराने विचारों को व्यक्त कर सकता है।

गुण-

a) गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान अनुभव तथा जानकारी पर ध्यान दिया जाता है रोगी के व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए उसके पुरानी अनुभूतियों का विश्लेषण आवश्यक नहीं है।

b) गेस्टाल्ट चिकित्सा की संचालन विधियाँ काफी सरल एवं सुगम है इसका परिणाम यह होता है कि इस तरह की चिकित्सा बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

दोष

a) इस चिकित्सा की विधि में बहुत अधिक विभिन्नता है इसलिये इसके आधार पर सही एवं वस्तुनिष्ठ आँकड़े प्राप्त करने में मुश्किल आती है।

b) गेस्टाल्ट चिकित्सा में रोगी के वर्तमान पर बल डाला जाता है तथा उसके भूत एवं भविष्य पर ध्यान नही दिया जाता है।

6.4.3. अस्तित्ववादी चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन **विन्सवैन्गर (1942) तथा मे, एन्जिल एवं एलेनवर्गर (1958)** ने किया। इसमें व्यक्ति की वैयक्तिकता तथा उसके मूल्यों एवं भावों को समझा जाता है और रोगी के स्वस्थ अस्तित्व के लिए एक माहौल तैयार किया जाता है। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छाओं तथा उत्तरदायित्व पर अधिक बल डाला जाता है। अस्तिववादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आधुनिक मनुष्य वास्तविकताओं से बहुत दूर चला गया है, उसका परम्परागत विश्वास खत्म हो चुका है और उसके अस्तित्व की क्षति हुई है। मनुष्य के सामने अनेक कठिनाईयॉ तथा समस्याये है परन्तु वह फिर भी स्वयं के अस्तित्व के प्रति जागरूक है, यह विशेषता केवल मनुष्य के पास है उसमें चिन्तन की योग्यता है और यह उसे स्वयं निर्णय करना है कि उसे किस तरह का व्यक्ति बनना है। मनुष्य का मुख्य उद्देश्य है जीवन मूल्यों की खोज करना।

अस्तित्ववादी मनौवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति को जीवित रहने के लिए अस्तित्ववादी चिन्ताओं से अवगत कराना पड़ता है। ये चिन्तायें निम्न है-

a) कि हमलोग एक दिन मर जाऐंगें, अस्तित्ववादी चिंता उत्पन्न करता है।

b) कि हमलोग अकेले है, अस्तित्ववादी चिंता उत्पन्न करता है।

c) आकस्मिक परिस्थितियों जैसे दुर्घटना आदि के साथ हमलोग लड़ नहीं सकते है, अस्तित्ववादी चिन्ता उत्पन्न करता है।

d) आगे हमें अपनी जिन्दगी को सँवारना है, अस्तित्ववादी चिंतन उत्पन्न करता है।

चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति को इस तरह की चिंताओं से मुक्त करना होता है। यहाँ चिकित्सक रोगी को उसके आस-पास की वास्तविकताओं पर ध्यान देने को कहते है और व्यक्ति को उसके आंतरिक पहलुओं पर ध्यान देने तथा सुधारने में मदद करते है।

लक्ष्य -

a) चिकित्सक उसे जिन्दगी के सही अर्थ समझाते है। वह क्लायंट के पुराने एवं वर्तमान पसंदगियों या चयनों से रोगो को सामना कराते है। इन दोनों में से रोगी के वर्तमान चयनों को वे अधिक महत्तवपूर्ण मानते है।

b) अस्तित्ववादी चिकित्सक रोगी या क्लायंट को एक खुला एवं स्नेहपूर्ण वातावरण में रहने तथा दूसरों के साथ मधुर समबन्ध रखने की प्रेरणा देते है ताकि रोगी की यह चिन्ता दूर हो सके कि वह अकेला है।

c) अस्तित्ववादी चिकित्सा का लक्ष्य रोगी को उसके भीतर छिपी हुई अन्तःशक्ति से पहचान कराना है।

गुण-

a) अस्तित्ववादी चिकित्सा पहली चिकित्सा है जिसमें रोगी को अपने भीतर छिपी अन्तःशक्ति की पहचान करायी जाती है और जीवन का अर्थ बताया जाता है।

b) इस तरह की चिकित्सा में क्लायंट अपने अस्तित्व को वास्तविक ढंग से समझने की कोशिश करता है इसलिए इससे अस्तित्ववादी स्नायुविकृति के लक्षणों को दूर करने में काफी मदद मिलती है।

c) इसमें चिकित्सक व्यक्ति के जीवन मूल्यों पर ध्यान देते है तथा व्यक्ति को सार्थक जीवन बिताने में सहायता करते है।

दोष

a) इस चिकित्सा की इस आधार पर आलोचना की है कि इसके पीछे कोई व्यवस्थित वैज्ञानिक आधारशिला नहीं है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यवहार चिकित्सा में ..... व्यवहार को परिवर्तित करके उसकी जगह पर .....व्यवहार को सिखलाने का प्रयत्न किया जाता है।
2. व्यवहार चिकित्सा का सबसे पहला सैद्धान्तिक स्रोत ..... द्वारा प्रतिपादित सीखने का सिद्धान्त है।
3. क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा विधि का प्रतिपादन .....ने किया था।
4. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगात्मक व्यवहार का कारण .....माना जाता है।
5. रैसनल इमोटिव चिकित्सा का प्रतिपादन ..... ने किया।
6. बेक चिकित्सा पद्धति का प्रतिपादन .....रोगियों के उपचार में किया जाता है|

6.5 सारांश

1. व्यवहार चिकित्सा में मानसिक रोगियों का उपचार ऐसी प्रविधियों से किया जाता है जिसका आधार पैवलोव व स्किनर का अनुबन्धन सिद्धान्त है।
2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा विधि का प्रतिपादन साल्टर तथा ओल्प ने किया। इसमें रोगी को पहले विश्राम की अवस्था में लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है और इसके बाद चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। अन्त में वह चिन्ता वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदीकृत हो जाता है।
3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा पद्धति भी व्यवहार चिकित्सा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (चिन्तन, कल्पना) पर विशेष रूप से बल दिया गया है। इसके प्रमुख प्रकार है

a) रैसनल इमोटिव चिकित्सा b) बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा c) तनाव टीका चिकित्सा d) बहुआयामी चिकित्सा।

6.6 शब्दावली

1. एगेरोफोबिया- जिसमें खुले या सार्वजनिक स्थान से भय लगता है।
2. आत्म अभिज्ञा- स्वयं के बारे में अवगत होना अर्थात् अपने भावों तथा अनुभूतियों को समझना।
3. अनुबन्धन- ये एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसके द्वारा उद्दीपको तथा अनुक्रिया के बीच एक सम्बन्ध स्थापित होता है।
4. स्नायुविकृति- इसे चिन्ता विकृति कहा जाता है। यह एक साधारण मानसिक विकृति है। इसमें व्यक्ति की ज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा क्रियात्मक प्रतिक्रियाओं में साधारण सी असामान्यता आ जाती है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असमायोजित, समायोजित
2. पैवलोवियन अनुबन्धन
3. साल्टर तथा वोल्प
4. गलत संज्ञान या चिंतन
5. एल्बर्ट एलिस
6. विषाद, चिन्ता एवं दुर्भीति

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यवहार चिकित्सा क्या है? क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा की व्याख्या करिये।
2. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा से क्या समझते है? यह व्यवहार चिकित्सा से किस प्रकार भिन्न है।
3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
4. गैस्टाल्ट चिकित्सा की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करिये।
5. रोगी केन्द्रित चिकित्सा के चरणों को समझाइये तथा उसके गुण व दोषों की व्याख्या करिये।
6. अस्तित्ववादी चिकित्सा क्या है? इसके गुण व दोषों का वर्णन करिये|

इकाई 7. चिंता विकृतियाँ:- भीषिका, दुर्भीति, सामान्यीकृत चिंता; मनोग्रस्तता-बाध्यता एवं उत्तर आघातीय तनाव विकृति (Anxiety Disorder:- Panic and Phobias, Generalized Anxiety disorder; Obsessive Compulsive Disorder and Posttraumatic Stress disorder)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 दुश्चिंता विकृति
7.4 भीशिका विकृति
7.5 दुर्भीति विकृति।
7.6 सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति
7.7 मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति
7.8 तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति
7.9 उत्तर अभिघातजन्य प्रतिबल विकृति
7.10 दुश्चिंता विकृति के कारण
7.11 दुश्चिंता विकृति के उपचार
7.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
7.13 सारांश
7.14 प्रश्नों के उत्तर
7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

दुश्चिंता विकृति से तात्पर्य व्यक्ति की उन मानसिंक विकृतियों व समास्याओं से होता है जिसके कारण व्यक्ति में चिंता व तनाव का स्तर इतना अधिक बढ़ जाता है जिससे व्यक्ति अपनी वास्तविक जिंदगी के साथ समायोजन नही कर पाता है। इन विकृतियों के कारण रोगी का व्यक्तित्व प्रभावित होता है जिससे व्यक्ति ठीक प्रकार से कार्य करने में सक्षम नही हो पाता है और उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है।

भीषिका विकृति (Panic Disorder)के व्यक्ति को दौरा पढ़ने लगते है जिससे रोगी की हृदय ग्रति तीव्र चलने लगती है। हृदय गति के तीव्र होने से रोगी में शारीरिक परिवर्तन होने लगते है।

दुभीति विकृति में रोगी को अनेको प्रकार के डर व आशंकाए सताने लगती है जिससे रोगी अपनी समाजिक परिस्थतियों के साथ समायोजन करने में सक्षम नही हो पाता है। सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति से ग्रसित रोगी में दुश्चिंन्ता, डर आशंकाए आदि अत्यधिक होती है परन्तु वह इस डर, दुश्चिन्ता के कारणों का विश्लेषण उचित प्रकार से नही कर पाता हैं।

मनोग्रसित बाध्यता विकृति में रोगी न चाहते हुए विचारों को बार-बार दोहराता हैं। विचारों को अपनी इच्छा के विरूद्ध दोहराने की क्रिया में बाध्यता महसूस करता है। उत्तर अभिघातन प्रतिबल विकृति में रोगी को अत्यधिक आधात की स्थिति से गुजरना पड़ता है। इस विकृति में रोगी में प्रतिबल, तनाव की स्थिति उत्पन्न् हो जाती है जिसका कारण तीव्र आघात होते है। ये तीव्र आघात प्रियजन की मुत्यु, नौकरी छुटने व अत्यधिक गम्भीर रोग आदि भी हो सकते है जिससे रोगी अपनी वास्तविक जीवन में कुंठित व्यवहार की ओर अग्रसर हो जाते है।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत दुश्चिंता विकृति के छः प्रकारो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें ।

- दुश्चिंन्ता विकृति
- भीषिका विकृति
- दुर्भीति विकृति
- सामान्यीकृत दुश्चिंन्ता विकृति
- मनोग्रस्ति-बाध्यता विकृति
- उत्तर अभिघातजन्य प्रतिबल विकृति।

7.3 दुश्चिंन्ता विकृति (Anxiety Disorder)

दुश्चिंन्ता विकृति अत्यधिक मात्रा मे लोगो में पायी जाती है इस प्रकार की विकृति के मुख्य लक्षण आंशका, भय, दुश्चिंन्ता आदि होते है। यदि व्यक्ति में दुश्चिंता की मात्रा तीव्र हो जाती है तो व्यक्ति को दौरा भी पड़ जाता है। दुश्चिन्ता के लक्षण साधारण व परिस्थिति जन्य होते है। क्योकि प्रतिबल/ तनाव की स्थिति न रहने पर लक्षण स्वतः ही समाप्त हो जाते है। दुश्चिंन्ता के उत्पन्न होने का कभी भी कोई स्पष्ट करण नही होता है। इन कारणो में परिवर्तन होता रहता है कभी एक कारण हो सकता **है** तो कभी दूसरा। इसे मुक्त प्रवाही दुश्चिंन्ता (Free Floating Anxiety) भी कहा जाता है।

दुश्चिंन्ता विकृति **से** तात्पर्य उन मानसिक विकृतियों व समस्याओं व विपदाओ से होता है जिसमें चिन्ता का स्तर इतना अधिक बढ़ जाता हैं कि व्यक्ति की वास्तविक जिंदगी प्रभावित होने लगती हैं। व्यक्ति के दिन प्रतिदिन के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है। व्यक्ति का वातारण के साथ समायोजन कुप्रभावित होने लगता है।

दुश्चिंन्ता प्रतिक्रिया के प्रत्यक्ष कारण के न होते हुए भी व्यक्ति में आशंका की स्थिति प्रतीत होती है। जिससें व्यक्ति में आन्तरिक तनाव उत्पन्न होने लगता है। इस तनाव को कम करने के लिए व्यक्ति शारीरिक क्रियाएं करता है, शारीरिक क्रियाएं करने के कारण व्यक्ति का शरीर भी प्रभावित होता है। व्यक्ति का तंत्रिका तत्रं भी एक प्रकार से तनाव की स्थिति में आ जाता है। ऐसी स्थिति में पहुचने से व्यक्ति अपनी पूरी कार्य कुशलता से कोई कार्य नही कर पाता है। उसमें कार्य करने की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण व समाप्त होने लगती हैं।

दुश्चिंन्ता विकृति से पीड़ित रोगी दुश्चिंन्ता के अलावा तनाव, बैचेनी और घबराहट का निरन्तर अनुभव करता है। उसमें चिड़चिड़ापन, एकाग्रता में कठिनाई और अनिद्रा के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई पड़ते है। व्यक्ति में जी मिचलाने, भूख न लगने, वजन कम होने जैसे लक्षण भी उभरने लगते है। बिना किसी कारण के हृदय गति भी तीव्र होने लगती है, रक्तचाप, नाडी गति बढ़ जाती है, रोगी का आत्म विश्वास काम होने लगता है। वह आंशका व डर से हमेशा भयभीत रहने लगता है।

दुश्चिन्ता विकृति से संबंधित उदाहरण:-

एक नवयुवक को निरन्तर ये शिकायत रहती थी कि उसके साथ कुछ बुरा होने वाला है। वह बहुत महीनो से शारीरिक थकान का अनुभव कर रहा था। उसके सिर, कमर तथा पैरो मे अति तीव्र दर्द रहने लगा। कभी-कभी उसे ऐसा महसूस होने लगता है कि उसके दिल की धड़कन तेज हो जाती है और उसका जीवन समाप्त होने वाला है।

मनोचिकित्सा का उपयोग करके रोगी के बारे में पता चला कि वह युवक अपने पिता के साथ व्यवसाय करता था उसे अपने पिता का कठोर तथा कटु व्यवहार बिल्कुल पसन्द नही था और इस कारण वह अपने पिता से आन्तरिक रूप से घृणा करता था। परन्तु पिता का सामना नही करने व उसकी दी हुई नौकरी को छोड़ने को साहस नही जुटा पा रहा था।

मनोचिकित्सा के अर्न्तगत जब रोगी को स्थिति का पता चला तब वह खुलकर अपने पिता से मिलने लगा व उनके द्वारा दी गई नौकरी छोड़कर अन्य नौकरी आरम्भ कर दी तब उसके रोग के लक्षण भी लुप्त होने लगें। यह युवक अचेतन रूप से तीव्र इडिपस मनोग्रन्थि (Oedipus Complex)से पीडित था अगर रोगी इडिपसी मनोग्रन्थि से पीडित न होता, तब इससे दुश्चिन्ता तंत्रिकाताप के विभिन्न शारीरिक लक्षण भी सम्भवता दृष्टिगत न होते है।

दुश्चिंन्ता विकृति एक नैदानिक समास्या है (**DSM-IV)** के अनुसार दुश्चिंन्ता विकृति के मुख्य छः प्रकार होते है के स्लर तथा उनके सहयोगियों के अनुसार व्यस्क जनसंख्या के करीब 15 से 16 प्रतिशत लोग दुश्चिंन्ता विकृति के किसी न किसी प्रकार से आवश्यक ग्रस्त होते है। दुश्चिन्ता विकृति के छः प्रकार इस प्रकार है--

1. भीषिका विकृति।
2. दुभीति विकृति।
3. सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति।
4. मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति।

5. उत्तर आधतीय तनाव विकृति।

6. तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति।

7.4 भीषिका विकृति (Panic Disorder):-

इस तरह की विकृति में रोगी के बार-बार तीव्र दौरे पड़ते है। इस तरह का दौरा पड़ने पर सावेंगिक रूप से तीव्र आंशका तथा भय के लक्षण विकसित हो जाते है। इस तरह के दौरा पड़ने पर व्यक्ति की हृदयगति तीव्र हो जाती है। हाथ-पाव ठंडा हो जाते है, सीने मे दर्द होने लगता है, वह अपने पांव पर खडा नही हो सकता है। रोगी को ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह मरने वाला है व कोई भयानक घटना घटने वाली है। इस प्रकार के दौरे पड़ने के कारण रोगी को लगता है कि उसे दिल का दौरा पड़ने वाला है, जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है व उसका अपने शरीर के अंगों पर नियंत्रण खत्म हाने लगता हैं इस स्थिति मे व्यक्ति को भीषिका का दौरा अचानक पड़ता है। कुछ सैकंड व कुछ घण्टो के भी हो सकता है। इसीलिए रोगी चीख चीखकर कर आसपास के लोगो को इक्कठ्ठा कर लेता है और डॉक्टर के उपचार को तुरन्त बुलाने के लिए कहता है। डाक्टर के उपचार के बाद औषधि देने पर दौरे समाप्त होने लगते है पर रोगी को यह आशका व डर हमेशा रहता है कि उसे दूसरा दौरा पड़ सकता है।

इस प्रकार के दौरे दिन में कई बार पड़ सकते है। यह महिने में एक दो बार भी पड़ सकते है। दौरो के बीच के अन्तराल में रोगी सामान्य स्थिति में भी बना रहता है। परन्तु उसमें चिन्ता की भावना पूर्णतः समाप्त नही हो जाती है बल्कि उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है जो दोबारा दौरा पड़ने पर स्वतः उभर आते है।

इस प्रकार के दौरे पड़ने पर रोगी अपनी वास्तविक, कल्पानिक, नयी पुरानी बातो, गलतियों की समीक्षा करता रहता है वह उन समस्याओं के बारे में सोचता रहता है जो अभी उसके सामने घटित भी नही हुई है। उनको लेकर हमेशा चिन्तित व आंशाकाओं से घिरा रहता है।

भीषिका विकृति घटनाक्रम:-

मेयर्स तथा उनके सहयोगियों (1984) के अनुसार इस विकृति का दर पुरूषों में 0.7 प्रतिशत तथा महिलाओं में लगभग एक प्रतिशत हेाता है। पोलार्ड एंव कार्न (1989) के अनुसार इस विकृति की शुरूआत आंरम्भिक अवस्था में होता है तथा इसका संबंध तनावपूर्ण जीवन की अनुभूतियों से होता है।

भीषिका विकृति के कारण:-

भीषिका विकृति के कारणो को दो भागों में बाटा जा सकता है।

1. जैविक कारक (Biological Factors)

2. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

1. जैविक कारक (Biological Factors):-

टारगेरसन (1983) के अनुसार भीषिका विकृति एंकागी जुड़वा (Identical Twin)बच्चों में भ्रातीय जुड़वा (Fraternal Twin) बच्चो की अपेक्षा काफी अधिक पाया जाता है।

चार्नी एवं हैनगर (Charney & Heinger)(1986) के अनुसार जब व्यक्ति के मस्तिष्क का वह सर्किट जो आपात कालीन प्रतिक्रिया को धीमा करना है या बंद करना है, की क्षमता कमजोर हो जाता है, तो इससे उसमें भीषिका विकृति उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती हैं रॉकिन्स तथा उनके सहयोगियों (1986) के अनुसार भीषिका विकृति के रोगी के मस्तिष्ठ के कुछ हिस्सों में रक्त् प्रवाह तथा आक्सीजन सामान्य से अधिक होता हैं। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जब श्वसन वायु में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा सामान्य से अधिक होती हैं तो इस कारण से भी भीषिका का दौरा पड़ता है। क्योकि कि कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा अधिक होने से अतिश्वसन (Hyperventilation) अवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

2. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Factors):-

क्लार्क (1989) के अध्ययन के अनुसार भीषिका विकृति उत्पन्न होने की एक महत्वपूर्ण कारण है कि व्यक्ति अपने भीतर उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं का सही व्याख्या नही करता है। भीषिका विकृति वाले रोगी सामान्य चिंता अनुक्रियाओं जैसे तीव्र हृदयगति, दम फूलने की स्थिति तथा चक्कर आने की स्थिति को यह मान लेते है कि अब भीषिका दौरा पड़ने वाला ही है। जब कि वास्ताविकता यह होता है कि यह अन्य कारको से उसमें होता है। ऐसी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्या से व्यक्ति में परेशानी और भी अधिक बढ़ जाती है और अंततोगत्वा उसमें पूर्ण रूप से भीषिका विकृति उत्पन्न हो जाता है। इस बात का समर्थन होल्ट एवं एण्डरसन (1989) ने भी किया। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि भीषिका विकृति में प्रत्यक्षित नियंत्रण का पर्याप्त महत्तव होता है।

भीषिका विकृति के उपचार:-

इस विकृति के उपचार के लिए कुछ औषध का उपयोग किया जाता है इसमें ट्राईसाईक्लिक विषाद विरोधी औषध (Tricyclic antidepressant drugs)तथा चिन्ता विरोधी औषध ((anti-anxiety drug) जैसे:- (Alprozalam) इस विकृति के रोगियों के उपचार में कुछ मनोवैज्ञानिक चिकित्साओं का भी उपयोग किया जाता है। क्लोसको एवं उनके सहयोगियों (1990) के अनुसार यदि शारीरिक संवेदनाओं की भ्रांत व्याख्या को यदि बदल दिया जाये जो इससे विकृति अपने आप दूर हो जायेगी।

7.5 दुर्भीति विकृति:-

दुभीति विकृति एक ऐसी नैदानिक समस्या है जिसमें व्यक्ति को विशिष्ट वस्तु क्रिया या परिस्थिति से सतत् एवं असंगत डर होता है। इसमें किसी भी छोटें बालक को रात के समय अचानक अधेरे के हो जाने से भयभीत होना या बालक के अकेले हाने पर किसी भयानक पशु को देखने से भयभीत होना एक सामान्य घटना है परन्तु जब कभी एक स्वस्थ किशोर अथवा प्रौढ़ व्यक्ति रात को थोड़े अंधेरे में अपने घर में अत्यधिक भयभीत होने लगते व तालाब कुँए, नदी आदि को देखकर कॉपने लगे व पालतु गाय, कुत्ते, बिल्ली को पास आता देखकर आंतक जैसी प्रतिक्रिया

करने लगे तब व्यक्ति का व्यवहार निश्चतः आसामान्य होता है। व्यक्ति के ऐसे अनियन्तीत अनैच्छिक, अंसंगत तथा अविवेकपूर्ण भय को दुभीति ही कहते हैं।

दुर्भीति विकृति के मुख्य तीन श्रेणी होती है। **एगोराफोबिया, सामाजिक दुर्भीति तथा विशिष्टि दुर्भीति**। **एगोराफोबिया** में व्यक्ति ऐसे सार्वजानिक जगहों में जाने से डरता है जिससे दूर रहना सम्भव नही है।

सामाजिक दुर्भीति में व्यक्ति वैसी सामजिक परिस्थति में जाने से डरता है जहाँ वह यह समझता है कि उसका मूल्याकंन किया जा सकता है। ऐसे लोग जन समूह के सामने बोलने या कुछ भी करने से घबराते है। ऐसे लोग शौचगृह का इस्तेमाल करने से डरते है। ऐसे व्यक्ति सामाजिक संबंधो से दूर रहना चाहते है।

विशिष्ट दुर्भीति वैसी होती है। जिसमें व्यक्ति कुछ लोग विशेष तरह के पशु पक्षी या कीड़े मकोड़े से काफी डरते है। उदाहरण स्वरूप एरेकनोफोबिया अर्थात मकडा से डर, साइनोफोबिया-कुत्ते का डर, टोनिट्रोफीबिया अर्थात आधी तूफान से डर आदि विशिष्ट दुर्भीति के कुछ उदाहरण है।

दुर्भीति प्रतिक्रियाएं अन्य आयु वर्गो की अपेक्षा प्रोढ़ावस्था के आरंम्भ में अधिक होती है यह पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होती है।

इसमे रोगी में दुर्भीति के अलावा कुछ शारीरिक लक्षण भी पाये जाते है। जैसे सिर का दर्द पेट में गडबड़ सिर चकराना, हीनता भावना, किसी गंम्भीर शारीरिक रोग की आंशका, अनिद्रा का मुक्त संबंधी कठिनाइया आदि। कुछ रोगियों में दुर्भीति प्रतिक्रियाओं की प्रकृति मनोग्रस्ति संबंधी होती है। मनोग्रस्ति संबंधी होती है। इसमें व्यक्ति के अचेतन में दमित अर्न्तद्वन्द्व से संबंधित तनाव व दुश्चिन्ता के प्रबल भाव तथा भय के लक्षण के रूप में एक दम फूट पडते है।

दुर्भीति उद्वीपक स्थिति से संबंधित व्यक्ति पलायन का भरसक प्रयास करते देखा जाता हैं तथा वह जितनी देर तक ऐसी स्थिति में अपने को फंसे देखता है उसके भय के लक्षण उतने ही अधिक उग्र होते ही चले जाते है।

दुर्भीति के लक्षणों के उत्पन्न होने का व्यक्ति की बौद्विक तथा सामजिक व आर्थिक स्थिति से कोई विशेष संबंध नही होता, परन्तु कुछ विशेष प्रकार की दुर्भीति की उत्पत्ति में आयु की विशिष्ट भूमिका आवश्य देखने में आती है। जैसे पशु दुर्भीति की उत्पत्ति विशेषत शैशवकाल तथा बाल्यकाल में देखने में आती है जब कि खुले स्थान की दुर्भीति विशेषता लड़कियों में यौवनारम्भ के समय पर देखने में आती हैं।

दुर्भीति का उदाहरण:-

एक स्वस्थ युवा लड़की को बहते हुए पानी से डर लगता था। भय का कारण समझने में असमर्थ थी। 7 से 20 वर्ष की आयु तक यह स्थिति बिना सुधार के ऐसी ही बनी रही। इस लड़की को बहते पानी की ध्वनि से भय लगता था। जैसे नहाने के लिए टब में पानी भरा जाता है था तो उसकी ध्वनि से दूर रहने के लिए घर से बाहर चली जाती थी। उसके परिवार के सदस्यों को काफी प्रयास करना पड़ता था। स्कूल में वह बहते हुए पानी की आवाज सुनकर मुचर्् ि छत हो जाती थी। इस प्रकार के भय के कारण उसको अपना जीवन व्यतीत करने में कठिनाई हो रही थी।

इस दुर्भीति का कारण यह था कि जब लड़की 7 वर्ष की थी तो वह अपनी माँ तथा मौसी के साथ पिकनिक पर गयी । शाम को जब माँ घर वापस आने लगी तो लड़की ने यह आग्रह किया कि वह कुछ दिन और अपनी मौसी के

साथ रहना चाहती है। उसने अपनी माँ को वचन दिया कि वह मौसी की आज्ञा के बिना कुछ नही करेगी । परन्तु कुछ समय बाद लड़की वचन तोड़कर अकेले घूमने चली गयी, काफी ढूढ़ने के बाद वह लड़की झरनों के बीच में पत्थरों के नीचे फसी हुई मिली। झरने का पानी ठीक उसके सिर पर गिर रहा था। जिससे भयभीत होकर चीख रही थी। घर आते समय उसकी मौसी ने वचन दिया कि वह उसकी माँ से शिकायत नही करेंगी। परन्तु लड़की ने इस बात पर विश्वास नही किया और घर वापस आते ही वह सो गयी और रात को ही उसकी मौसी चली गयी। दूसरे दिन से उसमें बहते हुए पानी की दुर्भीति उत्पन्न हो गयी। 13 वर्ष तक निरन्तर बनी रहने वाली दुर्भीति मौसी के केवल एक वाक्य पर समाप्त हो गयी मौसी ने लड़की **से** सिर्फ इतना कहा था मैने कुछ नही बताया।

आर्डड्सन (1968) के अनुसार तंत्रिकातापी विकारों से पीडित व्यक्तियों में से लगभग 8 प्रतिशत से लेकर 12 प्रतिशत व्यक्ति दुर्भीति के प्रतिक्रिया से पीड़ित पाये जाते है। युवा रोगियों में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक रहती है। मार्क्स (1969) के अनुसार विभिन्न प्रकार की दुर्भीतियों में से पशु दुर्भीति से लगभग 95 प्रतिशत स्त्रियां पीडित पायी जाती है जबकि खुले स्थानों की दुर्भीति में उसकी सख्या 75 प्रतिशत तथा सामाजिक दुर्भीति से 60 प्रतिशत स्त्रियां पीड़ित पायी जाती है। स्त्रियों में भयभीत होने की क्रिया अधिक मान्य तथा स्वीकार्य है।

कारण:-

दुर्भीति प्रतिक्रियायें अनेक व्यक्तित्व विकारों और मानसिंक रोगो मे पायी जाती हैं दुर्भीतियाँ आन्तरिक अथवा बाह्य खतरो का सामना करने के ऐसे प्रयास है जिनसे इन खतरनाक पस्थितियों को उत्पन्न होने से रोका जाये या सावधानी पूर्वक उनसे बचा जाये। दुर्भीति के उत्पन्न होने के निम्न कारण हो सकते है।

1. अनुकूलन:-

अनुकूलन सिंद्धान्त के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्धीपक उस समय उपस्थित हो जाये जब व्यक्ति किसी दूसरे कारण से भयभीत हो तो इस तटस्थ उद्धीपक में भी बाद के अवसरों पर भय उत्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

2. भयप्रद आवेगों के विरूद्ध सुरक्षा:-

व्यक्ति अपनी आक्रमता अथवा कामुक दमित इच्छाओं से उत्पन्न होने वाली दुश्चिन्ता से बचने और अपनी रक्षा के लिए दुर्भीति का सहारा लेता है। व्यक्ति जिस स्थिति से भयभीत होता है। वह भय का वास्तविक कारण नही होती। एक पति को नदी अथवा तालाब की दुर्भीति थी इसका कारण यह था कि उसके मन में अपनी पत्नी के डुबा देने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती रहती थी।

3. दमित अन्तर्द्धन्द्ध:-

दुर्भीति का मुख्य कारण व्यक्ति के अतीत के जीवन से संबंधित किसी एक घटना अथवा विषय वस्तु के प्रति दमित अर्न्तद्धन्द्ध रहता है।

4. प्रतिगामी व्यवहार:-

दुर्भीतिग्रस्त व्यक्ति का स्वभाव पलायनवादी तथा प्रतिगामी होता है। यदपि उसके प्रतिगमन का स्वरूप् सामान्यतः आंशिक ही रहता है। परन्तु फिर भी इसके उसमें अविवेकपूर्ण अपरिपक्व तथा शैशवकालीन व्यवहार के लक्षण एक विशेष स्थिति में एक दम से देखने में आने लगते है। मनोवैज्ञानिक दुर्भीति की उत्पत्ति बाह्य तथा पर्यावरण संबंधी कारको के अतिरिक्त शारीरिक कारको में देखने का प्रयास करते है।

उपचार:-

दुर्भीति मनोविकार के उपचार के लिए उसकी गम्भीरता तथा संबंधित रोगी की सामान्य स्थिति को आंकने की आवश्यकता होती है। दुर्भीति का उपचार इस बात पर निर्भर करता हैं कि उसका वास्तविक कारण क्या है ? यदि दुर्भीति का कारण कोई अभिघातपूर्ण अनुभव है तो उसका उपचार यह कि रोगी में इस अनुकूलन का विलोप अथवा विसंवेदन कर दिया जाये। यदि किसी बालक को कुत्ते ने काट लिया है और वह कुत्ते से भयभीत रहने लगता हो तो उसका उपचार है कि उसे बार बार आश्वस्त तथा प्रोत्सहित किया जाये ताकि वह किसी पालतू कुत्ते को छुने का साहस कर सके। यदि इस प्रक्रिया को बार बार दोहराया जाये तो वह कुत्ते की दुर्भीति से मुक्त हो जायेगा।

इससे व्यक्ति में एक निरपेक्ष घटना के प्रति भय उत्पन्न करने के स्थान पर मन पसन्द पुरस्कार देने की व्यवस्था की जाती है।

दुर्भीति ग्रस्त व्यक्ति की उपचार प्रक्रिया के लिए मनोचिकित्सक से लेकर व्यवहार रूपान्तरण तथा विद्युत आघात चिकित्सा तक की आवश्यकता पड़ सकती है। मनोचिकित्स के व्यवहार रूपांतरण से लाभ न मिलने पर विद्युत आघात चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। ऐसी उपचार पद्धति का प्रयोग करने से उनमें रोग के तीव्र लक्षण उत्पन्न होने लगते है और दुर्भीति तीव्र हो जाती है।

7.8 सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति (Generalized Disorder or GAD):-

सामान्यीकृत दुश्चितन्ता विकृति के अर्न्तगत रोगी लम्बी अवधि तथा सत्त अवास्तिविक या अत्यधिक चिन्ता से ग्रस्त रहता है। इस प्रकार की चिंता को स्वंत्रत प्रवाही चिंता (Free Floating Anxiety) भी कहाँ जाता हैं। इस विकृति से ग्रसित व्यक्ति हमेशा तनाव, दुश्चिंन्ता एवं अवास्तिविकता की दुनियाँ में खोया रहता है। (DSM-IV)के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की जिन्दगी कम से कम छः माह ऐसे ही व्यतीत हुए हो जिसमें से अधिकांश अवधि में उसे अवास्तविक एवं अत्यधिक चिंता बना रहे तो निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति को सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति का रोगी ही कहा जायेगा।

7.8.1 लक्षण (Symptoms):-

सांवेगिक रूप से ऐसे रोगी बेचैन, तनावग्रस्त, दिखायी देता है। वह भविष्य में घटित हाने वाले खतरों या घटनाओं जैसे हृदय आघात, मृत्यु या नियंत्रण खोने आदि जैसी बातो के बारे में सोच-सोचकर काफी परेशान रहता है। संज्ञानात्मक रूप से वह सदैव कुछ बुरा होने की उम्मीद करते रहता है। परन्तु वह यह नही बता पाता है कि क्या बुरा होने वाला हैं। पसीना आना, हृदयगति तीव्र होना, पेट में गड़बड़ी होना, सिर दर्द, हाथ पैर ठण्डा हो जाना आदि जैसी आपातकालीन दैहिक प्रतिक्रियाएं भी देखने में आती है। रोगी का व्यवहार बहुत ही असंयमित और

चिड़ाचिड़ापन वाला हो जाता है ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी थकान अनुभव करते है। और स्वंय को एकाग्रचित नही कर पाते है। ऐसे व्यक्ति को किसी निर्णय पर पहुचनें में अत्यधिक कठिनाई होती हैं।

7.8.2 घटनाक्रम (Incidence):-

रेपी ने (1991) के अनुसार यह विकृति सामान्य जनसंख्या के मात्र 4 प्रतिशत लोगों मे ही होता है। बारलो 1996 के अनुसार इस विकृति की शुरूवात सामान्यः 15 साल की आयु में प्रारंभ हो जाता है लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते है जिन्हे यह समस्या पूरी जिंदगी के दौरान होता रहता है। यह विकृति पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक होता है।

7.8.3 कारण (Causes):-

1) जैविक कारण (Biological Factors):-

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस विकृति का कारण जैविक भी होता है। स्लेटर एवं षिल्ड (1969) ने एकांगी जुड़वा बच्चों के 17 युग्मों तथा भ्रातीय युग्मों के 28 जुड़वाँ युग्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात यह परिणाम प्राप्त किया कि 49 प्रतिशत प्कमदजपबंस जूपदे बच्चों में सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति थी जबकि 4 प्रतिशत भ्रातीय जुड़वाँ में ही यह विकृति थी।

2)) मनोविश्लेषणात्मक कारक ((Psychoanalytic Factors):-

इस सिद्धान्त के अनुसार म्हव की इच्छा एंव प्क की इच्छा में अचेतन संघर्ष के परिणाम स्वरूप इस विकृति की उत्पत्ति होती है। चूँकि इस प्रकार के चिंता का कारण अचेतन संघर्ष होता है, अतः बिना कारण जाने ही हमेशा चिंतित एंव आशकित रहता है।

3) अधिगम सिंद्धान्त:-

ओल्पे (Wolpe)1958, ने इस प्रकार की विकृति का कारण विकृत अधिगम माना है। यदि कोई व्यक्ति जागृत अवस्था में सामाजिक संपर्क को लेकर चिंतित रहता है और यदि वह इस बात को लेकर अन्य लोगो के साथ अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करता है तब ऐसे व्यक्ति में सामान्य दुश्चिंता विकृति होना पाया जाता सकता है। इस सिद्वान्त के अनुसार व्यक्ति की चिंता बाह्य उद्धीपकों से अनुबंधित हो जाताहैं।

4) संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक कारक:-

बारलों के अनुसार इस विकृति से ग्रस्त रोगी धमकी पूर्ण परिस्थतियों को अपने नियन्त्रण से परे मानते है जिसके कारण से उनमें अत्यधिक चिंता बना रहता है। **केन्डाल एवं इनग्राम (1989)** तथा बेक एवं उसके सहयोगियों में अनुसार जब व्यक्ति किसी साधारण एवं नयी परिस्थति को भी तनावपूर्ण एवं धमकी भरा प्रत्यक्षण करता है तो उसमें उस व्यक्ति में अनावश्यक चिंता बढ़ जाती है। ऐसे रोगी भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को लेकर इस प्रकार परेशान रहता है। बटलर एवं मैक्यूज (1983) के अनुसार इस प्रकार के रोगी अस्पष्ट उद्धीपकों को अधिक धमकी पूर्ण समझते है तथा स्वंय के साथ अशुभ धटनाओं के होने की अशांका से भयभीत रहते है।

7.8.4. उपचार -

इस विकार से ग्रसित रोगी के लिए मुख्यतः दो तरह की प्रविधियाँ अधिक लोकप्रिय है।

1. जैविक या मेडिकल प्रविधि ((Biological or Medical techniques):-

चिंता-विरोधी औषधि लेने से रोगी के लक्षणों में कमी हो जाती है लेकिन यह भी देखा गया है कि (anti-anxiety drug)को बन्द करने के पश्चात पुनः लक्षण दिखायी देने लगते है। रोगी फिर से सोचने लगता है कि उसके चिंता के लक्षण का स्वरूप कुछ ऐसा है जिस पर नियन्त्रण नही पाया जा सकता है। इस प्रकार की औषधि के सेवन से तत्कालिक लाभ तो मिल जाता है लेकिन स्थाई लाभ नही मिलता है।

2. **संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा (**Cognitive Behavioral Therapy):-

प्रशान्तक औषधियों के सेवन से पश्चात मनोचिकित्सा के द्वारा ही व्यक्ति की दुश्चिंता के वास्तविकता कारणों को जानकर उसे दूर किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्यवहारात्मक चिकित्सा शिथिलीकरण, क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा, शाब्दिक निर्देश, माँडलिंग, क्रियाप्रसूत, जैसी प्रतिविधियों का उपयोग किया जा सकता है।

7.7 मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति (Obsessive Compulsive Disorder) :-

मनोग्रस्ति और बाध्यता दो तरह की समस्याएं होती है। मनोग्रस्तता में रोगी बार-बार मन में आने वाले किसी अतार्किक एवं असंगत व अस्वागत योग्य विचारों को न चाहते हुए भी मन में दोहराता रहता है। रोगी ऐसे विचारों की अर्थहीनता, असंगतता एवं अतार्किक स्वरूप को भली भाँति समझता हैं और उनमे से छुटकारा भी पाना चाहता है परन्तु वह ऐसा नही कर पाता है। औ एक ही विचार बार बार उसके मन में आते रहता हैं। जिससे उसकी मानसिंक शांति इस हद तक क्षुब्ध हो जाती है कि उसके समायोजन में बाधा पहुचाती है। दूसरी समस्या बाध्यता है यह एक क्रियात्मक प्रतिक्रिया होती है जहाँ रोगी अपनी इच्छा के विरूद्ध किसी क्रिया को बार-बार करने के लिए बाध्यता महसूस करता है। ऐसी क्रियाएँ अवांछित ही नही बल्कि अतार्किक एंव असंगत होती है साफ सुथरे हाथ को बार बार धोने की क्रिया, ताला ठीक से लगा देने पर भी उसे बार बार झकझोर का देखना, सड़क पर खड़े होकर आते जाते गड़ियों को नम्बर नोट करना आदि बाध्यता के कुछ उदाहरण है।

एक सामान्य व्यक्ति में भी कभी-कभी कुछ विचार अनैच्छिक रूप से निरन्तर आते जाते देखे जाते है। जैसे कि एक गृहणी सोने से पहले अपने घर के दरवाजे की सिटकनी बन्द करके बिस्तर पर चली जाती है। और फिर मन ही मन जब यह शंका करने लगती है कि उसने दरवाजे की सिटकनी को ठीक प्रकार से बंद नही किया है तब उसका फिर से बिस्तर से उठकर सिटकनी के लगे होने की पुष्टि कर लेना एक प्रकार से सामान्य व्यवहार ही है, परन्तु इस संबंध में पुष्टि के हो जाने के पश्चात भी ग्रहणी द्वारा रात में बार बार अपने बिस्तर से उठकर सिटकनी के बन्द होने को देखते रहना आसामान्य व्यवहार तथा उसकी आधाभूत असुरक्षा की भावना का ही प्रतीक है जिसके कारण उसमें ऐसी मनोग्रस्ति बाध्यता देखने में आती है।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के दो मुख्य रूप होते है। प्रथम मनोग्रस्थित बाध्यता के वे रूप जिनमें व्यक्ति के विचार तथा व्यवहार नैतिक तथा सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से अवांछित तथा घृणित होते है। जैसे मानव हत्या संबंधी विचार,

अनुचित काम संबंधी विचार, प्रतिशोध के घोर व कर विचार, प्रियजनों को बुरी बुरी गाली देने के विचार आदि। दूसरे मनोग्रसित बाध्यता के कुछ ऐसे रूप भी होते है जिनका संबंध व्यक्ति को समाजिक व नैतिक विचारों तथा व्यवहारों से रहता है। ऐसी स्थितियों में व्यक्ति अपनी दमित पाप, अपराध भावनाओं के प्रति प्रायश्चित करते देखा गया है या फिर उन क्रियाओं तथा पूर्व सावधानियों का सहारा लेतें देखा जाता है जिनके द्वारा आन्तरिक तनाव कम हो जाते है।

मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़िता रोगियों की संख्या 4 प्रतिशत से लेकर 20 प्रतिशत तक देखने में आती है।

7.7.1 लक्षण:-

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार का मूल स्त्रोत व्यक्ति के अचेतन में दमित रहता है तथा इस अचेतन के कारण ही व्यक्ति चेतन स्तर पर अनेक निरर्थक लगने वाली क्रियाएँ करते देखा जाता है। मनोग्रस्ति बाध्यता के लक्षणो का संबंध व्यक्ति के दमित व अचेतन काम आवेगों, विरोध व धृणा के भावों, नैतिक व अनैतिक इच्छाओं, विचारों तथा विचित्र क्रियाओं से जुडे होता है।

संशय तथा अनिश्चिता का दोष मनोग्रसित व्यक्ति में अत्यधिक पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों के मन में हमेशा डर व आशंका बनी रहती है जिसके कारण वह महत्वपूर्ण निर्णय नही ले पाते है और हमेशा शंकाओं से घिरा रहते है। मनोग्रस्ति व्यक्ति के मन में अनेक अनिष्ठ विचार आते रहते है। वह इन विचारों के अर्न्तगत कुछ भी सोच सकता है, जैसे किसी पर आक्रमण करना, शत्रुता करना, घृणा करना, ऐसे ही अन्य आमानवीय विचार विकसित करने का प्रयास करता है। इनका व्यवहार निरर्थक होने के साथ-साथ अनैच्छिक व पुनरावृयात्मक होता है। वह अपने निरर्थक व्यवहार की पुनरावृत्ति करते रहते है चाहे उनकी इच्छा न हो। ऐसी अवस्था में रोगी शैशवकाल की परिस्थति का अनुभव करने लगता है। उसको असुरक्षा की भावना प्रतीत होती है। इसीलिए उसका व्यवहार बच्चों के समान बचकाना होने लगता है। मनोग्रस्ति-बाध्यता से पीड़ित व्यक्ति अपने अचेतन के वेदनापूर्ण तनाव को कम करने के लिए तथा अपने अहम् को विघटित होने से बचाने के लिए रक्षायुक्तियों को भी अपने व्यवहार में अनुप्रयुक्ता करता है। इस स्थिति में व्यक्ति के व्यवहार में दोष घृणा व विरोध के भाव अत्यधिक प्रबल उठते है।

मनोग्रस्ति व्यक्ति की विभिन्न बाध्यताओं के लक्षणों का स्वरूप व्यक्तित्व के अन्य विकारों में भी मिलता है। बाध्यतामूलक क्रियाओं का संबंध प्राय कामुकता और आक्रमकता से होता है। इनके अलावा मद्योन्माद ,अग्निदहनों माद, दर्शन रति विशिष्ट प्रकार की बाध्यताएं है।

1. **मद्योन्माद बाध्यता** (Dipsomania)में संबंधित व्यक्ति में मद्यपान के लिए अतिशय सनक देखनें में आती है तथा इसके लिए उसमें कभी-कभी दुश्चिन्ता जैसे दौरे पड़ने लगते है।

2. **चौर्योन्माद ((Kleptomania)** विकार के अर्न्तगत व्यक्ति कुछ विशेष वस्तुओां की चोरी के लिए आन्तरिक रूप से अति विवश रहता है। यद्यपि उसके पास वस्तु का कोई भी अभाव नही होता है।

3. **अग्निदहानोमाद ((Pyromania)** से पीड़ित रोगी के विचारों में आग लगाने की तीव्र इच्छा होती है। सम्पत्ति को ऐसे जलाने के उसे एक विशेष प्रकार की आनन्द की अनुभूर्ति होती है।

4. **फीटिशपरायणता ((Fetishism):** इसके अन्तर्गत व्यक्ति विभिन्न कर्म काण्डों व भूत प्रेत की पूजा आदि करने के प्रति अभिप्रेरित रहता है।

5. दर्शनरति ((Voyeurism) -इस मनोग्रस्ति के अन्तर्गत व्यक्ति विशेषतः पुरूष युवतियों व युवा महिलाओं को देखने व उनके शरीर के विभिन्न उद्धीपक अंगों पर ही आसामान्य रूप से मोहित रहने की बाध्यता होती है।

7.7.2 मनोग्रसित बाध्यता के कारण:-

मनोग्रस्ति बाध्यता तंत्रिकाताप के अनेक कारण हो सकते है जो निम्न प्रकार से है।

1. दमित संवेगात्मक अनुभव व काम संबंधी प्रबल तनाव:-

मनोग्रस्ति व्यक्ति अपने अचेतन में दमित काम संबंधी आवेगो के तनाव से अत्यधिक पीड़ित रहता है। इसके कारण उनका दोषपूर्ण दमन करता रहता है। दोषपूर्ण दमन के कारण आवेग अभिव्यक्ति के लिए निरन्तर लालायित रहते हैं जिससे व्यक्ति में प्रबल तनाव बना रहता है। एक पति को यह विचार बार-बार सताता है। कि उसकी पत्नी वफादार और चरित्रवान नही है इसका कारण यह कि स्वंय पति अपनी पत्नी के प्रति वफादार नही था। व्यक्ति दमित आवेगो के मूल स्त्रोत को जान नही पाता है।

2. दमित इच्छाओं के विस्फोट से रक्षा:-

व्यक्ति की दमित इच्छाएं अचेतन में सक्रिय होती है और निरन्तर यह प्रयास करती रहती है कि चेतन स्तर पर पहुँच जाये। ये अनैतिक अथवा भयानक इच्छाएँ चेतन स्तर पर न पहुच सके इसके लिए रोगी अपने चेतन स्तर को ऐसी इच्छाओं द्वारा व्यस्त रखता है जो अपेक्षाकृत कम भयानक होती हैं

3. **आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना:-**

जब काई व्यक्ति ऐसा अनैतिक व्यवहार कर लेता है जो उसमें आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना उत्पन्न कर दे तो मनोग्रसित बाध्यता के लक्षण इसी आत्म अवमूल्यन का कारण बन जाते है।

4. **विचार व व्यवहार का स्थिरीकरण:-**

मनोग्रस्ति बाध्यता विकार के अन्तर्गत व्यक्ति के आंशिक प्रतिगमन का एक परिणाम यह होता है कि उसके विचार व व्यवहार में स्वच्छाता तथा गंदगी, नैतिकता तथा अनैतिकता, प्रेम तथा घृणा के विचारों के प्रति एक प्रकार की कठोरता देखने में आती है। इससे ही उसके व्यवहार में बार-बार हाथ धोने व अत्यधिक स्वच्छ करने की बाध्यता देखी जाती है।

5. पाप तथा अपराध के लिए अचेतन स्वदंडन:-

ऐसे विकार से पीडित व्यक्ति में पराहम की कठोरता के कारण अपने पाप व अपराध के लिए दण्ड भोगने की तीव्र भय रहता है। जो कभी-कभी शारीरिक रोग के लक्षणों में भी परिवर्तित हो जाता है।

6. तनाव और दुश्चिन्ता विपत्तियों से भय:-

मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़ित रोगी में दुश्चिंन्ता व तनाव का भाव उत्पन्न होने लगते है। उसे सुरक्षा का आभाव व घोर विपत्तियों तथा क्षति होने का भय सताता रहता है। ऐसी संकट की स्थितियों से बचने के लिए अनेक अन्धविश्वासों का सहारा लेते है।

7. अत्यधिक कठोर व दोषपूर्ण समाजीकरण का प्रभाव:-

कैमरान के अनुसार व्यक्तित्व में मनोग्रस्ति बाध्यता की उत्पत्ति में उसकी दोषपूर्ण समाजीकरण की प्रक्रिया की भी विशिष्ट भूमिका होती है। दोषपूर्ण पारिवारिक स्थिति व सामजीकरण की प्रक्रिया के कारण भी व्यक्ति मनोग्रस्ति बाध्यता का शिकार हो जाता है।, क्योकि माता पिता के धैर्यहीन होने पर बालक भी अधीर अशान्त व शंका ग्रस्त रहने लगता है।

8. व्यक्तित्व के विशिष्ट घटक:-

मनोग्रस्ति से पीडित व्यक्ति में व्यक्तितत्व कारक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जैसे अर्न्तमुखिता, स्वघाती व्यवहार, आधारिक सुरक्षा का अत्यधिक अभाव, स्वदण्डन की अदम्य प्रवृत्ति, अंधविश्वासी व अपराध भाव से पीड़ित रहने का स्वभाव।

7.7.3 उपचार:-

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार के उपचार के लिए मनोचिकित्सा की अति महत्पूर्ण भूमिका होती है इसके अर्न्तगत पहले व्यक्ति के अचेतन मन के अध्ययन के लिए मनोविश्लेषण विधि के उपयोग की आवश्यकता होती है। जिससे व्यक्ति के आन्तरिक तनाव के मूलस्त्रोत का पता लग सके।

रोगी के आन्तरिक तनाव के अध्ययन में मनोविश्लेषण विधि सफल न होने पर नार्केशिस की आवश्यकता पड़ सकती है। इस स्थिति में रोगी के साक्षात्कार से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इन सभी विधियों के विफल होने पर विद्युत आघात विधि तथा एक अन्य शैल्य चिकित्सा तथा प्रमस्तिष्क अंशोच्छेदन(टोपेक्टामी) का अन्तिम विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता है। टोपेक्टामी चिकित्सा विधि के अर्न्तगत मस्तिक के उस विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है जिसका संबंध मनोग्रस्ति विचार से पाया जाता है। मनोग्रस्ति बाध्यता के उपचार में व्यवहार चिकित्सा की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। व्यवहार चिकित्सा के तीन प्रविधियों क्रमशः माँडलिंग फ्लडिंग तथा अनुक्रिया निवारण को संयोजित करके मनोग्रसित-बाध्यता विकृति का उपचार किया जाता है। फोआ तथा कोजाक (1999) ने अपनी समीक्षा में 16 ऐसे अध्ययनों को सम्मिलित किया जिससे 300 रोगियों को व्यवहार चिकित्सा के इन तीनो प्रविधियों द्वारा उपचार किया गया था और परिणाम यह निकला की उसमें से करीब 83 प्रतिशत रोगियों को ऐसे उपचार से काफी फायदा हुआ।

7.8 उत्तर अभिघातीय तनाव विकृति (Posttraumatic Stress Disorder):-

यह एक ऐसी दुश्चिंता या डर है जिसकी उत्पत्ति विशिष्ट घटना से होती हैं। जैसे प्राकृतिक आपदा, आगजनी, भूकंप, बाढ़ , युद्ध आदि। इसके अतिरिक्त कुछ घटनाओं ऐसी होती हैं जिसके लिए व्यक्ति स्वंय जिम्मेदार होता है जैसे विवाह-विच्छेद, किसी को जान से मारना, बलात्कार आदि। ऐसी स्वभाविक या अस्वभाविक विशिष्ट घटना के बाद व्यक्ति में साँवेगिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण से व्यक्ति का व्यवहार कुसमयोजी हो जाता है। इस तरह की स्थिति को ही उत्तर अभिघातीय तनाव विकृति कहाँ जाता है।

7.8.1 लक्षण(Symptoms):-

PTSD के सम्बन्ध में (DSM-IV)में छः लक्षण या कसौटी बतलाया गया है जिसके आधार पर इसकी पहचान की जाती है।

1) व्यक्ति को अपने दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में गंम्भीर तनाव से उत्पन्न मानसिक आघात की याद बार-बार आती है। यह याद जागृत अवस्था में भी आ सकती या नींद में भी।

2)) व्यक्ति हमेशा उन उद्धीपको से दूर भागने की कोशिश करता है। जो उस मानसिक आघात से उत्पन्न करने वाली घटनाओं से किसी न किसी रूप से साहचर्यित होता हैं क्योकि इससे उनमें गंभीर चिंता उत्पन्न होती है।

3) व्यक्ति में हमेशा उच्चस्तरीय उत्तेजना जैसे चिरकालिक तनाव तथा चिड़चिड़ापन का अनुभव होता है। साथ ही साथ उसमें अनिद्र की शिकायत हो जाती है तथा उनमें चिड़चिड़ान या वेचैनी के स्तर को भी वह सहन नही कर पाता है।

4) व्यक्ति में एकाग्रता की शिकायत रहती है तथा स्मृति लोप तीव्र हो जाती है। इसके अतिरिक्त दर्द संबंधी संवेदनाओं के प्रति सुन्नता ;छनउइपदहद्ध का गुण भी पाया जाता है।

अण् व्यक्ति में विषाद का स्तर बढ़ जाता है। वह अपने आप को सामाजिक संपर्क से दूर कर लेता है।

अ1) उपरोक्ता सभी लक्षण करीब एक माह से अधिक व्यक्ति मे मौजूद हो।

7.8.2 कारण:-

उत्तर अघातीय तनाव विकृति के निम्न कारण हो सकते है।

1. जैविक कारण ((Biological factors):-

क्रिस्टल एवं उनके सहयोगियों 1989 ,के अनुसार मानसिक आघात से नारएड्रीनरजिक तन्त्र ((Noradrenergic System)) प्रभावित हो जाता है। जिससे रक्त में नोरइपाइफ्राइन ((Nor epinephrine) का स्तर बढ़ जाता है। जिसके कारण से व्यक्ति में उत्तेजना और आक्रमकता बढ़ जाती है। कोल्ब के अनुसार जब व्यक्ति में पुराने स्नायविक रास्ते नष्ट हो जाते है। जो व्यक्ति में उत्तरअभिघात तनाव के लक्षण उत्पन्न करते है।

2. मनोवैज्ञानिक कारक ((Psycholgical Factors):-

ब्रेसलाऊ के अध्ययन से यह पता चला की माता-पिता से कम उम्र में ही बिछुड जाने पर विकृति का पारिवारिक इतिहास होने पर तथा महिलाओं में मानसिक आघात होने पर उत्तर अभितीय तनाव की विकृति को बढ़ने की संभावना अधिक हो जाती है। जोन्स एवं बारलो के अनुसार मानसिक आघात उत्पन्न होने के पहले जिन लोगो में मनोवैज्ञानिक कठिनाईया अधिक होती है उनमें PTSD के लक्षण अधिक विकसित होते है इस तरह के व्यक्तित्तव को पूर्ण विकृत व्यक्तित्व ((Premorbid Personality) कहाँ जाता है।

मनोगतिकी मॉडल के ((Pschodynamic Model) अनुसार, तीव्र एवं गहरे मानसिक आघात से निबटने की आवश्यकता के कारण व्यक्ति दमन का सहारा लेता है जिससे उसमें प्रत्याहार एवं सुन्नता के लक्षण विकसित होते है। दूसरी तरफ जब दमन कमजोर पड़ जाता है। तब व्यक्ति पुनः उस मानसिक आघात को अनुभव करने लगता है। जोन्स एवं बारलो के अनुसार जब व्यक्ति में आत्मनिन्दा, भविष्य में होने वाले मानसिक आघात की प्रत्याशा तथा भय का विकास आदि मौजूद होते है। तो ऐसी स्थिति में PTSD के लक्षण विकसित होते है।

3. सामाजिक कारक:-

उत्तर अभिघात विकृति की उत्पत्ति में सामजिक कारकों का भी योगदान होता है। इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों से पता चला है कि अधिक तीव्र एवं जान जाने वाली धमकी पूर्ण परिस्थतियों से भी PTSD के उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। सामाजिक समर्थन की कमी से भी व्यक्ति में PTSD विकसित होता है। वियतनाम युद्ध से लौटने के बाद जिन सैनिको को सामजिक तिरस्कार का सामना अधिक करना पड़ा, उनमें उत्तर अभिधात विकृति का विकास तेजी से हुआ।

7.8.3 उपचार:-

उत्तर अभिघात कारक तनाव के लिए कुछ आपातकालीन उपाय किये जाते है। इस आपाकलीन उपायों में गहरी वैयक्तिक परामर्श से लेकर सामूहिक परिचर्चा का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार के आपातकालीन उपाय एक तरह से निवारण(Preventive) उपाय होते है। PTSD के उपचार में विभिन्न तरह के चिंता-रोधी औषध तथा विभिन्न प्रकार के विषाद-विरोधी औषध का उपयोग किया जाता है।

मनोचिकित्सकों ने इस विकृति के उपचार हेतु कुछ विशेष सुझाव दिया है। जिन्हे निम्नक्रमानुसार उपयोग किया जा सकता है।

- क्लायंट के साथ विश्वसनीय संबंध कायम करना।
- मनसिक आघात से निबटने की प्रक्रियाओं के बारे में क्लांयट को शिक्षा देना।
- मानसिक आघात को पुनः अनुभव करने का साहस उत्पन्न करना।
- क्लायंट के अनुभवों में मानसिक आघात से संबद्ध अनुभवो को समन्वित करना।

उपरोक्त क्रम को अपनाकर उपचार करने पर काफी सफलता मिलती है।

7.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- दुश्चिंता विकृति के मुख्य लक्षण कौन से है?
- DSM का पूरा नाम क्या है?
- DSM का चतुर्थ संस्करण किस सन् में प्रकाशित हुआ ?
- DSM के अनुसार दुश्चिंता विकृति के कितने प्रकार है ?
- भीषिका विकृति में दौरे पड़ने की गति कैसी होती है ?
- दुर्भीति विकृति की तीन श्रेणियों के नाम को उल्लेखित करें ?
- दुर्भीति विकृति के दो कारण बताइयें ?
- मनोग्रस्ति-बाध्यता से पीड़ित रोगियों का प्रतिशत कितना है।
- मनोग्रस्ति बाध्यता के दो कारण बताइये ?
- टोपेक्टामी चिकित्सा क्या है ?
- दुश्चिंता विकृति के तीन कारण कौन-कौन से हैं?
- दुश्चिंता विकति के उपचार में कौन कौन सी विधियाँ सहायक है?

7.13 सारांश

दुश्चिंता विकृति के उत्पन्न होने के लिए व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याये उत्तरदायी होती है। व्यक्ति अपनी जीवन की अनेको समस्याओं व विपदाओं के कारण एक सी ऐसी परिस्थति में फस जाता हैं जो उसमें दुश्चिंता उत्पन्न कर देती है जिसके कारण व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समयोजन नही कर पाता है जिससे उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है। इस कुसमयोजित व्यवहार के कारण व्यक्ति में दुश्चिंता के लक्षण उत्पन्न होते देखे जाते है। दुश्चिंता विकृति के छः प्रकार होते है। भीषिका विकृति, दुर्भीति विकृति सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति मनोग्रस्तता बध्यता विकृति, उत्तर अभितीय तनाव विकृति, तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति भीषिका विकृति से पीड़ित व्यक्ति को अत्यधिक तीव्र दौरे पड़ते है। जिसके कारण व्यक्ति को हृदय गति आसामन्य हो जाती है, सांस थमने लगती है, चक्कर आना लगते है। रोंगी को उपचार देने के पश्चात ये दौरे सामाप्त होने लगते है। दुर्भीति विकृति के अर्न्तगत रोगी को किसी वस्तु परिस्थति व सार्वजानिक स्थानों पर जाने से असंगत डर लगता हैं। दुर्भीति विकृति के कारण रोगी वातावरण में घटने वाली घटनाओं से भयभीत रहता है। दुर्भीति विकृति के उत्पन्न होने के कई कारण होते हैं जैसे अनुकूलन भयप्रद आवेगों के विरूद्ध सुरक्षा, दमित अर्न्तद्धन्द्ध प्रतिगामी व्यवहार आदि।

मनोग्रस्ति-बाध्यता में रोगी न चाहते हुए भी ऐसे कार्यों को करने के लिए विवश हो जाता है। जिनको वह करना नही चाहता है। इन कार्यों को करते समय जो न करने की इच्छा जागृत होती है इसे बाध्यता की प्रतिक्रिया कहते है।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के कारण निम्नलिखित है जैसे दामित संवेगात्मक अनुभव, काम संबंधी प्रबल तनाव, दमित इच्छाओं के विस्फोट से रक्षा, आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना, विचार व व्यवहार का स्थिरीकरण, पाप व अपराध के लिए अचेतन स्वदण्डन, तनाव और दुश्चिंता विपत्तियों से भय, अत्यधिक कठोर व दोषपूर्ण सामाजीकरण का प्रभाव आदि।

उत्तर अभिघात प्रतिबल विकृति में रोगी को अत्यधिक, घातक व विपत्ति जनक परिस्थतियों का सामना करना पड़ता है इसमें रोगी की किसी व्यक्ति की मृत्यु व बीमारियों जैसी घटनाओं का सामना करना पड़ता है।

7.14 स्वमूल्यांकन प्रश्न के उत्तर

1. दुश्चिंता विकृति के मुख्य लक्षण आशंका, भय, डर, चिंता आदि होते हैं।
2. डी0एस0एम0 का पूरा नाम डायनगोस्टिक एण्ड स्टैटिस्टिकल मैनूअल आफ मेन्टल डिसआर्डर है।
3. डी0एस0एम0 के अनुसार दुश्चिंता विकृति के छः प्रकार है।
4. डी0एस0एम0 का चर्तुर्थ संस्करण 1994 में प्रकाशित हुआ।
5. भीषिका विकृति में दौरे पड़ने की गति तीव्र होती है।
6. दुर्भीति विकृति के तीन श्रेणिया के नाम निम्नकिंत है। एगोराफोबिया, सामजिक दुर्भीति तथा विर्शिष्ट दुर्भीति।
7. दुर्भीति विकृति के दो कारण दमित अन्तद्धन्द्ध तथा अनुकूलन।
8. मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़ित रोगियों का प्रतिशत असामान्ष् रोगियों में 4 से 20 प्रतिशत है।
9. मनोग्रस्ति-बाध्यता के दो कारण, 1. तनाव एवं दुश्चिंता विपत्तियों से भय। 2. कठोर एवं दोषपूर्ण सामाजीकरण।
10. टोपेक्टामी चिकित्सा का तात्पर्य यह है कि इनमें मस्तिक के विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है जिसका संबंध मनोग्रस्ति विचार से होता है।
11. दुश्चिंता विकृति के तीन करण निम्नलिखित है। 1. जैविक कारक 2. मनोवैज्ञानिक कारक सामाजिक-साँस्कृति कारक।
12. दुश्चिंता विकृति में वैयक्तिक चिकित्सा, व्यवहारात्मक चिकित्सा, बहुमाडल चिकित्सा का उपयोग किया जाता है।

7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

. Kapil, H.K. (2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली.

7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दुश्चिंता विकृति से क्या तात्पर्य है दुश्चिंता विकृति के कारणो की विवेचना कीजिए ?
2. दुश्चिंता विकृति के प्रकारो का वर्णन कीजिए व उपचारों की व्याख्या प्रस्तुत कीजिए ?
3. दुर्भीति विकृति से क्या तात्पर्य है। दुर्भीति विकृति के कारणो व उपचारो का वर्णन कीजिए ?
4. मनोग्रस्ति-बाध्यता से क्या अर्थ है इनके कारणो सहित उपचार की विवेचना कीजिए ?
5. उत्तर अभिधात तनाव विकृति के कौन-कौन से कारण है इसकी उपचार प्रविधि का वर्णन कीजिए|

इकाई 8. मनोविदलता: अर्थ, लक्षण एवं प्रकार; स्थिर-व्यामोही विकृतियाँ एवं व्यामोही विकृतियाँ, स्थिर-व्यामोह के लक्षण, हेतुकी एवं उपचार (Schizophrenia: Meaning and Symptoms and Types; Paranoid and Delusional Disorders:- Symptoms, Etiology and Treatment)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना।
8.2 उद्देश्य ।
8.3 मनोविदलता।
8.3 मनोविदलता का अर्थ।
8.3.1 मनोविदलता के लक्षण।
8.3.3 मनोविदलता के प्रकार।
8.3.4 मनोविदलता के कारण।
8.3.5 मनोविदलता की उपचार प्रक्रिया।
8.3.6 स्वमूल्यांकन हेतु **प्रश्न**।
8.4 व्यामोह
8.4 व्यामोह विकृति का अर्थ।
8.4.1 व्यामोह विकृति के लक्षण।
8.4.2 व्यामोह के प्रकार।
8.4.3 व्यामोह के कारण।
8.4.4 व्यामोह प्रतिक्रिया से प्रकार।
8.4.5 व्यामोह की उपचार प्रक्रिया।
8.4.6 स्वमूल्यांकन हेतु **प्रश्न**।
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

मनोविदलता तथा व्यामोह दो ऐसे आसमान्य मनोविज्ञान से संबंधित मनस्ताप है जो व्यक्ति के व्यवहारो को प्रभावित करते है। असामान्य मनोविज्ञान में इन दोनो ही विकारों की पूर्णत विवेचना की गई है।

मनोविदलता तथा व्यामोह जैसे रोग मनोस्तापों में सर्वोपरि रोग है, मनोविदलता एक बहुत ही अति गम्भीर जटिल, क्षतिजनक, विघटनकारी भयानक मानसिक रोग है। इस मानसिक रोग से व्यक्ति के व्यक्तित्व में विघटन उत्पन्न हो जाता है। यह व्यक्ति के व्यवहार के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे ज्ञानात्मक, क्रियात्मक भावात्मक व्यवहारात्मक पक्षों को प्रभावित करता है। जिससे व्यक्ति के व्यवहारों में विघटन आ जाता है। इस रोग से व्यक्ति में मानसिंक संवेगात्मक विघटन तीव्र गति से होना प्रारम्भ हो जाते है।

मनोविदलता तथा व्यामोह दोनो ही मनस्तापों का संबंध चिन्तन प्रक्रिया से होता है। मनोविदलता में रोगी वास्तविक जीवन से हटकर काल्पनिक दुनिया में डूबने लगता है तथा व्यामोह से पीडित व्यक्ति में भ्रमासक्तियों की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती है इसमें व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक जीवन व पास्स्परिक संबंध पूर्णत विकृति जन्य होने लगते है। ऐसे व्यक्ति मिथ्या धारणाओं पर अधिक विश्वास करते है और भ्रमासक्तियों से ग्रसित रहते है। इस रोग से व्यक्ति में अंहकारी और स्वार्थी हाने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हम मनोविदलता तथा व्यामोहों के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेगें कि -

1. मनोविदलता का अर्थ क्या है
2. मनोविदलता के लक्षण
3. मनोविदलता के प्रकार
4. मनोविदलता के कारण
5. मनोविदलता का उपचार
6. व्यामोह विकृति के क्या कारण है
7. व्यामोह के प्रकार
8. व्यामोह विकृति के कारक
9. व्यामोह विकृति के उपचार|

8.3 मनोविदलता का अर्थ

मनोविदलता असाध्य मानसिक रोग है। जब व्यक्ति इस रो के चुगल में फँस जाता है तो उसके लिए सामान्य स्वास्थ प्राप्त करना अत्यन्त जटिल हो जाता है।

सन् 1860 में बेल्जियम के मनोचिकित्सक ने 13 वर्षीय बालक का उदाहरण प्रस्तुत किया |जिसमें यह बालक पहले अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि वाला था परन्तु कुछ समय बाद उसकी रूचि पढने में नही रही। वह दूसरो से खिंचा-खिचा सा रहने लगा, अल्पभाषी हो गया, वह बिना संकोच के अपने पिता को मारने की बात करने लगा, बालक

की इस तरह की स्थिति को मोरेल ने मानसिंक हास कहा। क्रेपलिन ने इसे असामजिक मनोहास या डिमेन्सिया प्राईकोक्स (Dementia Praecox) का नाम दिया। 1911 में स्विस मनोचिकित्सक ब्लूलर ने इस रोग का नाम शिजोफेनिया रखा, जिसका अर्थ व्यक्ति के व्यक्तिव में दरार पड़ना है या फिर खण्डित मन अथवा अत्याधिक विघटित व विभक्त व्यक्तित्व होता है।

मनोविदलता की स्थिति में व्यक्ति सांसरिक वास्तविकताओ से दूर हो जाता है और अनेको मिथ्या विभ्रमों में लिप्त हो जाता है।

कोलमैन के शब्दों में **मनोविदलता एक ऐसा विवरणात्मक शब्द है जिससे मानस्तापी विकारों के एक ऐसे समूह का बोध होता है जिससे व्यापक रूप से विकृतरूपों, प्रत्यक्षण, चिन्तन तथा संवेग के विघटन तथा खण्डन के साथ साथ सामाजिक अन्तःक्रिया से पलायन देखने में आता है।**

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इससे व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो में विघटन उत्पन्न होता है, जिससे व्यक्ति का जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है।

आयु की दृष्टि से यह रोग सभी उम्र के व्यक्तिओं मे पाया जाता है। इनमे से 75 प्रतिशत रोग प्रायः 15 वर्ष की आयु से लेकर 45 वर्ष की आयु तक के ही व्यक्ति के ही व्यक्ति रहते है। यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषो मे अधिक होता है यह नगर निवासियों तथा अविवाहित व्यक्तियों में अत्यधिक होता है|

8.3.1 मनोविदलता के लक्षण:-

मनोविदलता एक एकल मनोरोग न होकर विभिन्न विकारो का सामूहिक रूप है मनोविदलता को लक्षणो का मंडल भी कहा जाता है।

1. जीवन की वास्तविकता से पलायन:-

मनोविदलन की इस स्थिति मे व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन से दूर हटने का प्रयास करने लगता है। वह अपने आस पास रहने वाले लोगो से दूर होने लगता है व उनमें रूचि कम लेता है। उसे किसी भी बाहरी गतिविधि का कोई ज्ञान नही रहता है और वह धीरे धीरे सांसरिक सुखों से मुक्ति प्राप्त कर कल्पना की दुनिया में विलीन होने लगता हे।

2. स्वलीनता:-

मनोविदलता का रोगी बाह्य जगत से दूर होकर अपनी छोटी से स्वप्नमयी दुनिया बना लेता है और वह उसी में बना रहना चाहता है और उसी के अनुसार कार्य करता है ऐसी स्थिति में यदि रोगी को किसी भी प्रकार की क्षति होती है तो उसे, उस बात का अनुभव नही होता है या फिर कम होता है।

3. व्यापक मानसिक ह्रास तथा विघटन:-

मनोविदलता के रोगी में जब व्यक्तित्व का विघटन प्रारम्भ होता है तब व्यक्ति की मानसिक शक्तियो तथा उसके द्वारा अर्जित कुशलताओं का हास व विघटन तेजी से होने लगाता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार में जैसे चिन्तन, प्रत्यक्षण, अवधान व साहचर्य संबंधी अनेक विकार प्रदर्शित होने लगते है।

4. व्यवहार की विसंगतियाँ:-

मनोविदलता के रोगी के व्यवहार में अनेको विकृतियाँ आने लगती है। इसमें रोगी को अपने बारे में कुछ ज्ञान नही होता हैं वह सब कुछ भूलने लगता है कि वह कौन है तथा क्या करता है। वह स्वंय को काफी धनवान समझने लगता है, तो वह सेठ की तरह व्यवहार करने लगता है और कभी-कभी वह अपने आप को गरीब समझने लगता हैं और भिखारियों जैसा व्यवहार करने लगता है। उसकी सोचने समझने की शक्ति क्षीण होने गलती है।

5. भ्रमासक्तियाँ और विभ्रम:-

इसमें रोगियों मे अनेको प्रकार के विभ्रम पैदा हो जाते है जिससे उसे अपने जीवन में समयोजन बनाये रखने में कठिनाई उत्पन्न होने लगती है वह जीवन की वास्तविकता को समझने का प्रयास नही करता है और वह अपनी मिथ्यापूर्ण बातों को ही सच समझता है कभी कभी उसे ऐसा भी लगने लगता है कि मानो सभी उसके दुश्मन है और उसके विरूद्ध कोई षडयन्त्र बना रहे है। ऐसी ही भ्रमासक्त्यिों तथा विभ्रगों से व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपना दुश्मन बना लेता है।

6. भाषा संबंधी विकार:-

मनोविदालिता के रोगी में भाषा से संबंधी विकार उत्पन्न हो जाते है। क्योकि मनोविदलता के रोगी होने के कारण उसकी सोचने समझनें की शक्ति कम हो जाती है जिससे वह समझ नही पाता है कि वह क्या बोल रहा है । वह मनगढन्त कहानी बनाने लगता है। शब्दों का उच्चारण भी सही ढंग से करने में सफल नही हो पाता है। भाषा का सही प्रकार से उपयोग न होने पर उसके व्यवहार अमाननीय व अपमान जनक हो जाता है।

7. संवेगात्मक विमुखता तथा अनुपयुक्तता:-

ऐसे रोगियों की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का स्वरूप उदासीनता, विमुखता तथा अनुपयुक्तता का ही होता है। ऐसे व्यकित्यों को अपने वास्तविक जीवन से प्रेम नही रहता है उसका व्यवहार विच्छेदित हो जाता है, उसका अपने आपसी संबंधो पारिवारिक व व्यक्तिगत संबंधो के प्रति लगाव कम होने लगता है और वह अपने संबंधो को खत्म करने का प्रयास करने लगता है। जिससे उसमें उदासी की भावना उत्पन्न हो जाती है |उसका व्यवहार विचलित हो जाता है |वह सुखद परिस्थिति में भी दुख अनुभव करने लगता है और अति विचित्र प्रतिक्रियाएँ करने लगता है।

8.3.2. मनोविदलता के प्रकार –

अमेरिकन साइकियाट्रिक ऐसोसिएशन के अनुसार मनोविदलता के निम्नलिखित प्रकार होते है।

1. सरल प्रारूप मनोविदलता:-

मनोविदलता के सरल प्रारूप् के अर्न्तगत इसके लक्षण धीरे धीरे तथ शनै शनै क्रमिक रूप से उत्पन्न तथा विकसिक होते है। इस प्रकार के मनोविदलता के रोगी की रूचियाँ, इच्छाएँ सकुचित होती है जो धीरे धीरे खत्म होने लगती है।ऐसे व्यक्ति अत्यधिक उदासीन रहने लगते है, जिससे उनके सामाजिक संबंध भी टूटने लगते है रोगी अपनी ही दुनिया में खोया रहने लगता है |उसे अपने जीवन से मोह कम होने लगता है |उसे अच्छे बुरे तक का भी ज्ञान नही

रहता है। यहा तक कि उसे अपनी सफलता तथा असफलता की कोई परवाह नही होती है वह किसी भी कार्य को पूरा करने में असमर्थ होने लगता है इस प्रकार के रोगी अपने बाल्यकाल में तो ठीक होते है और व्यवहार भी ठीक प्रकार से करते है |परन्तु धीरे धीरे उनके लक्षण बदलने लगते है। ऐसे व्यक्तियों को घर पर रखकर सुधारा जा सकता है| परन्तु कुछ रोगियों को कभी-कभी मानसिंक चिकित्सालायों तथा सुधार गृहो मे रखने की आवश्यकता होती है। इसी से संबंधित एक अध्ययन (ओ0 केन्ट 1948) में दशार्य गया जो कि 64 रोगियों पर किया गया इस रोग के धटित होने का औसत आयु विस्तार 17-24 वर्ष था इन रोगियों के व्यवहार संबंधी प्रतिक्रियाएँ घटित होने का निम्न प्रतिशत था।

व्यवहार का प्रकार	**घटित होने का प्रतिशत**
आक्रमक व्यवहार	65.0
व्यामोह और/या विभ्रम	42.9
लैगिक या मद्यपान संबंधी व्यवहार	39.07
अत्यन्त विघटित व्यवहार	34.09
अति स्वास्थ्य संबंधी चिन्ताएँ	30.2
संसार से अतिरिंजित विमुखता	22.3

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रोगी में आक्रामक व्यवहार की अभिव्यक्ति अधिक होती है।

एक नवयुवती हाईस्कूल पास करने के दो वर्ष उपरान्त पढ़ने के उदेश्य से कालेज गई वह कालेज में चिन्तित एवं उदास रहती थी तथा व्यवहार विचित्र था। वह अपना कोई कार्य ठीक प्रकार से नही कर पाती थी। उसके अनुसार जब वह 16 वर्ष की थी, तब उसका परिचय एक नवयुवक से हुआ जिसने उसे घर पहुचाया तथा विदाई लेते समय चुम्बन ले लिया। वह चाहती थी कि वह नवयुवक पुनः लौट आवे और उससे मिले। यह सरल प्रारूप मनोविदलता का स्पष्ट उदाहरण है।

2. युवा विदलन (हीवी फ्रैनिक) प्रारूप:-

हीवी फ्रैनिक प्रारूप का सर्वप्रथम वर्णन सन् 1871 में जर्मनी मनोरोग चिकित्सक एडवाल्ड हैकर ने किया। हीवीफ्रैनिया शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है युवा मन। इस प्रकार की मनोविदलता कम आयु वालो को होती है। ऐसे व्यक्ति अजीव तथा विचित्र प्रकार व्यवहार करते है। ऐसे व्यक्तियों का व्यवहार सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होता है जो स्वंय के लिए भी घातक हो जाता है। इस प्रकार के रोगी के प्रमुख लक्षण सवेंगात्मक अस्थिरता, विभ्रम, भ्रान्ति व चिन्तन, वाकदोष तथा विघटित व्यक्तित्व होता है। जैसे-जैसे यह रोग बढता जाता है रोगी में एक सवेगात्मक उदासीनता आनी प्रारम्भ हो जाती है।

इस प्रकार की अवस्था में रोगी को अत्यधिक विभ्रम घेर लेते है जिससे उसमें भ्रान्ति होना उत्पन्न हो जाती है रोगी को कभी कभी ऐसा लगने लगता है जैसे उसे किसी जहरीले कीडे ने काट लिया है। जिससे उसके पेट के अन्दर

विषाक्त गैस भरी रहती है। यदि वह मुँह खोलेगा तो लोग मर जायेगे। इस प्रकार के रोगी का व्यवहार एक बच्चे के समान हो जाता हैं। ऐसी भ्रमासक्तियों के अनेक रूप होते है। धार्मिक भ्रमासिक्त के कारण ऐसी स्थिति में रोगी अपने को एक दैविय अवतार ही समझने लगता हैं वह कभी कभी स्वंय को धार्मिक सुधार के ठेकेदार ही समझनें लगता है।

3. कैटाटोनिक प्रारूप मनोविदलता (Catatonic Type):-

कैटाटोनिक मनोविदलता का सर्वप्रथम वर्णन जर्मनी चिकित्सक कार्ल कहलबॉम ने 1868, में किया था। इस प्रकार की मनोविदलता रोगी में अचानक ही तथा विचित्र ढंग से देखने को मिलती है। ऐसे रोगी वास्तविकता से बहुत दूर होते है। इस प्रकार की मनोविदलता की दो स्थितिया होती है -जडिमा अवस्था तथा उतेजना अवस्था। जडिमा अवस्था में रोगी अत्यन्त शान्त प्रकृति का हो जाता है जैसे उसकी चैतन्यता समाप्त हो गई हो। ऐसे रोगी एक ही स्थान पर कई घण्टो तथा कई दिनो तक बैठे रहते है जिससे उसके हाथ पैर नीले पड जाते है व सूजन आ जाती है| ऐसी स्थिति में रोगी के पेशीय तन्त्र में कठोरता तथा संवेदन हीनता आ जाती है। जिसके कारण यदि उसे उसको क्षति भी पहुचाये जाये तो वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नही कर पाता है उसे अपनी शारीरिक प्रतिक्रियाओं का भी ज्ञान नही रहता है ऐसी स्थिति में रोगी को कभी कभी लोग पागल भी कह देते है|ऐसे रोगी किसी से ज्यादा बोलना भी नही पंसद करते है।

उत्तेजना अवस्था:-

उत्तेजना अवस्था जडिमा अवस्था के विपरित होती है। इस अवस्था में रोगी अत्यधिक सक्रिय हो जाता है और जोर जोर से चीखने चिल्लाने लगता हैं वह स्वंय को हानि भी पहुँचा सकता है आत्महत्या भी कर सकता है तथा दूसरो की हत्या का प्रयास भी कर सकता है। वह अपने साथ-साथ दूसरो के लिए भी हानिकारक हो सकता है |मोरसिन (1973) ने 110 रोगियों के अध्ययन में देखा कि जडिमा अवस्था की प्रधानता वाले रोगियों के अध्ययन की संख्या सर्वाधिक होता है। उदाहरण: एक 19 वर्षीय युवती जो दो वर्ष पूर्व ही विक्षिप्त हो गई थी कुछ समय बाद उसने भोजन करना बन्द कर दिया। वह अवाजे सुनती थी। जब उसे चिकित्सालय में भरती कर दिया गया तब भी खाना नही खाती थी और अनेको अजीवों गरीब हरकते करती रहती थी। कभी कभी यह कहती थी कि क्या मैने आराम किया था। डाक्टर साहब मुझे क्षमा कर दीजिए। उसे वास्तविक दुनिया से कोई संबंध नही होता वह तो सदैव अपनी दुनिया में विचरण किया करती थी।

4. व्यामोह (पैरानायड) प्रारूप मनोविदलता:-

इस प्रकार के रोगियों की संख्या अन्य मनोविदलता प्रारूप की तुलना में सर्वाधिक होती है। इस प्रकार के रोगियों मे लक्षण संवेगात्मक अस्थिरता उदासीनता, संशय, भ्रमासक्तियाँ आदि होती है। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति अत्यधिक शक्की प्रवृति के होते है उनके अन्दर हमेशा यह भय सदैव बना रहता है कि कोई उन्हे मारने की कोशिश कर रहा है या उसके खिलाफ पंडयन्त्र रच रहा है। रोगी यह भी सोचने लगता है कि अन्य लोग उसकी निन्दा कर रहे है। मनोविदलता के रोगियों के व्यामोह अतार्किक एवं परिवर्तनशील होते है। वही पैरानोईया के रोगियों के व्यामोह तार्किक व स्थायी होते है। व्यामोह प्रारूप मनोविदलता का लक्षण व्यक्ति के जीवन की लगभग 35 वर्ष की अवस्था

में उभरता है। उत्पीड़न भ्रमासक्ति (Delusion of Persecution) से ग्रसित रोगी को लगाता है कि उसके सगे संबंधी उसके दुश्मन हो गये है और वे उसे क्षति पहुँचाने को ताक में हमेशा रहते है, जब कि महानता भ्रमासाक्ति (Delusion of Grandeur) से ग्रसित रोगी को ऐसा लगता है कि लोग उसकी महानता से जलते है क्योंकि वह एक महान अभिनेता या नेता है। इसी कारण से लोग उसे विष देकर मारना चाहते है तथा उसकी प्रत्येक गतिविधियों के बारे में विद्युतीय उपकरण के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते है। उपरोक्त भ्रमासक्तियों के अतिरिक्त रोगी को श्रृवण, दृष्टि, त्वचा आदि से संबंधित विभ्रम भी होते हैं |

5. बाल्यकालीन मनोविदलता प्रारूप (Childhood Type Schizophrenia:-

इस प्रकार की मनोविदलता का जन्म वाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों मे मुख्य लक्षण, लोगो से दूर भागना, विचार प्रक्रिया का विघटित होना, अंनियत्रित कम व आक्रामक प्रवाहो का होना, पारस्परिक संबंधो का अभाव, चिन्तन का विघटन, अंसगत व्यवहार, भाषा संबंधी विकार जैसे धीरे धीरे बोलना और शब्दो का विरूपण और मनोग्रस्ता आदि। इसमें बालको का विकास अनियमित ओर मन्द गति से होता है। वास्तविकता का ज्ञान विकसित नही हो पाता तथा खाने, सोने आदि की आदतो मे विध्न उत्पन्न हो जाता है। गोल्डफार्ड (Goldford) (1961) के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण बालक के मस्तिष्क का आँगिक रूप से क्षतिग्रस्त होना होता है।

6. तीव्र अविभेदित प्रारूप मनोविदलन (Acute Undifferentiated type) :-

इस प्रारूप में मनोविदलता के लक्षण अचानक उत्पन्न हो जाते है जिसका कोई स्पष्ट कारण नही होता है, परन्तु कुछ समय बाद पुन उत्पन्न भी हो जाते हैं यह प्रारूप मनोविदलता की प्रारम्भिक अवस्था होती है। यदि इस रोग का समय से उपचार नही हो पाता, तब यह मनोविदलता के किसी एक मुख्य रूप में परिवर्तित हो जाता है।

7. दीर्घकालिक अविभेदित प्रारूप मनोविदलन:-

दीर्ध कालिक प्रारूप के लक्षणो में विविधता होती है और ये लम्बे समय तक बने रहते है। मनोविदलता के लक्षण होते हुए भी रोगी किसी न किसी सीमा तक अपना समायोजन करने में सफल और जीविका को चलाता रहता है। इसके अर्न्तगत सम्बन्धित रोगी के व्यक्तित्व में अनेक लक्षण जैसे- बौद्धिक ह्रास संवेगात्मक विकारो व व्यवहारगत् विचलनों के लक्षण दिखायी देते है।

8. भाव प्रारूप मनोविदलता:-

इस प्रारूप मनोविदलता संबंधी लक्षणों के साथ साथ रोगी मे उल्लास व आवसाद संबंधी लक्षण देखने में आते है इस प्रारूप से पीड़ित व्यक्ति कभी उल्लास व उन्मादी लक्षण को दर्शाता हैं तथा साथ ही साथ भ्रमासक्तियाँ तथा विभ्रमों के लक्षण भी देखने को मिलते है।

9. अवशिष्ट मनोविदलता:-

इसमें वे रोगी आते है जो चिकित्सालयों के उपचार के बाद काफी ठीक हो जाते है परन्तु उनमें मनोविदलता के लक्षणों के कुछ अवशेष विद्यमान होते है।

8.3.3. मनोविदलता के कारण:-

मनोविदलता के कारणो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है जैविक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, एवं सामजिक कारक।

1. जैविक कारक:-

जैविक कारक के अर्न्तगत निम्न तत्व मुख्य रूप से आते है।

अ. आनुवंशिकता :-

कालमैन (1953) के अनुसार एक व्यक्ति जितना अधिक मनोविदलता के रोगी से रक्त के अधार पर संबंधित होगा उसमें मनोविदलता के रोग होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी। समरूप ;प्कमदजपबंस जूपदद्ध यमज में यह सभ्भावना 86.2 प्रतिशत है जबकि सगे भाई बहनों में यह केवल 10.2 प्रतिशत है।

ब. तन्त्रिका क्रियावृत्ति (Neurophysiology):-

आनुवांशिकता और पर्यावरण संबंधी कारको से प्रभावित व्यक्तियों के जीवन में जब तीव्र प्रतिबल उत्पन्न होता है तो उनके मस्तिक की तंत्रिका क्रियात्मक प्रक्रियाएँ प्रभावित हो जाती है। तुलाने (1954) के अनुसार जब स्वायत तंत्रिका तन्त्र के कार्य विकृत हो जाते है, तब उसके उच्चतर मानसिक कार्यो पर भी दूषित प्रभाव पडते देखा जाता है। होगलैण्ड (1954) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह पाया कि एड्रीनल कार्टेक्स मनोविदलता के रोगियों में प्रतिबलक स्थितियों के सम्मुख अल्प मात्रा में ही कार्य करता है। जब कि सेक्लर (1952) के अनुसार (Adrenal cortex) की अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण ही मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न् होते देखे जाते है।

स. शरीर संरचना (Body Constitution):-

शरीर संरचना के सम्बनध में क्रेशमर (1925) के अनुसार दुर्बलकाय (Aesthetic), सुडौलकाय (Athletic), लोग मनोविदलता से अधिक पीड़ित होते है। जब कि शैल्डन (1954) के अनुसार लम्बाकृतिक (Ectomorphic) तथा मध्याकृतिक (Mesomorphic) लोग अन्य मनस्तापों की अपेक्षकृत मनोविदलन से अधिक पीड़ित होते है। डेविडसन (1957) के अनुसार दुबले व पतले व्यक्तियों में दुश्चिन्ता और संवेदनशीलता अधिक होती है जिसके परिणाम स्वरूप वे सामान्य सामाजिक अन्तःक्रिया से दूर रहते है जो मनोविदलन उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है।

2. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes):-

कैपलिन तथा ब्लूलर ने मनोविदलता के उत्पन्न होने में मनोवैज्ञानिक कारणो पर बल दिया है-

अ. विकृतिजनक पारिवारिक प्रतिरूप:-

मनोविदलता की उत्पत्ति में उसके परिवारिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। रोगी अपने परिवार से ही अनेक दोषपूर्ण अभिवृतियों, प्रतिक्रियाओं, दोष पूर्ण समाजिक कारण को सीखता है। माता पिता के अलावा परिवार के अन्य सदस्य भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हे। फ्रोमरिकमान (Fromm-Reichmann 1948)ने मनोविदलता के रोगी की माँ के लिए विशेष पद जैसे मनोविदलतायी माँ (Schizophrenic mother) का प्रयोग

किया ऐसी माताएँ अपने बच्चो की आवश्यकताओं के प्रति उदासीन, दंबग एवं अप्रभावशील आदि होती है। फ्रोमरिकमान के अनुसार ऐसी माताएँ ऊपर से अपने बच्चों के प्रति समर्पित दिखती है परन्तु सचमुच में वे ऐसा नही होती है और बच्चो का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए करती है। वे अपने बच्चों के प्रति अति सुरक्षात्मक एवं तिरस्कारात्मक मनोवृत्ति दिखाती है जिसके परिणाम स्वरूप बच्चों में मनोविदलता उत्पन्न होने की एक मजबूत पृष्ठभूमि तैयार होती है। वारिंग एवं रिक्स (1965) के अध्ययन के परिणाम में यह पाया गया कि मनोविदलता के रोगियों की मात्राएँ अत्याधिक भज्जालू, अपर्याप्त, प्रत्याहारी (Withdrawn) , चिंतित शक्की एवं असंगत की जब कि सामान्य व्यक्यिों की माताओं में बहुत सारे वैसे गुण पाये गये जिसे फ्रोम रिभमान ने मनोविदलतायी माँ का गुण बतलाया था।

ब आरम्भिक मानसिक आघात और वचन (Early psychic Trauma and Deprivation)-

मनोविदलन के रोगी अपनी वाल्यावस्था में अनेक तरह के कष्टकारी अनुभवों, दुखद, मानसिक आघात सह चुके होते है जिसमें उनका मानसिक गठन प्रायः अति निर्बल, संवेदनशील, पराजित तथा अपरिपक्व रह जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी कई विकारो से ग्रस्त हो जाता है।

स. अत्यधिक प्रतिबल:-

मनोविदलन के उत्पन्न होने का एक कारण तीव्र प्रतिवल भी हो सकता है। तीव्र प्रतिबल की स्थिति में रोगी अपना मानसिक सन्तुलन खोने लगता है। किशोरवस्था और आरम्भिक प्रौढ़ावस्था के प्रतिबल का सम्बन्ध अधीनता, स्वाधीनता, आक्रमकता और कामुकता आदि से होता है। माता पिता द्वारा परस्पर विरोधी मांगे और अवास्ताविकपूर्ण आकाँक्षा स्तर प्रतिबल को और अधिक बढ़ा देता है। वह समाजिक सहभागिता से दूर रहने का प्रयास करता हैं, परन्तु यह उसका प्रत्यागमन भी उसके प्रतिबल के कम नही कर पाता है और वह धीरे धीरे वास्तविक संसार से दूर होने लगता है तथा मनोविदलन का शिकार हो जाता है।

3. सामजिक कारण:-

कैरेन हार्नी ने मनोविदलता का कारण सामजिक असमायोजन माना है । सामाजिक कारकोमेंगरीबी, वेकारी, असुरक्षा, सामाजिक विद्यटन, गन्दी बस्तियाँ तथा व्यक्तिगत समस्याएँ प्रमुख है। हालिगषेड व रेडलिक (1954) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मनोविदलता का रोग निम्न सामजिक, तथा आर्थिक स्तर के व्यक्तियों में अधिक घटित होता है। बड़े बड़े नगरो की झुग्गी - झोपड़ियों में मनोविदलन के रोगी अधिक पाये जाते है और उच्च सामजिक आर्थिक स्तर की वस्तियों में कम होता है। न्यूयार्क के श्वेत नागरिकों की आपेक्षा नीग्रो नागरिकों में मनोविदलन अधिक पाया जाता है।

8.3.4 मनोविदलन का उपचार:-

मनोविदलता के उपचार के लिए प्रशान्तक औषधियों और ऊर्जावर्द्धक औषधियों का उपयोग किया जाता है। इन औषधियों द्वारा रोगियों की उत्तेजना, चिड़ापन चिन्तन विकार, दुश्चिन्ता घबराहट, तनाव आदि को नियत्रिंत किया जाता है। यह औषधिया रोगी का मूड ठीक करने तथा वातावरण में रूचि उत्पन्न करने मे सहायक होती है। प्रशान्तक औषधियों की सहायता से रोगी को तनाव मुक्त किया जा सकता है |इन औषधियों का उपयोग करने से व्यकित निद्रा की आवस्था मे पहुच जाता है। प्रशान्तक औषधियों के साथ साथ कुछ रोगियों को विद्युत आघात की चिकित्सा भी दी जाती है।

मनोविदलता के रोगियों के उपचार के लिए मुख्यतः आघात चिकित्सा, इन्सुलिन पद्धति, शल्य चिकित्सा, व्यवासयिक चिकित्सा सामजिक चिकित्सा, मनो सामजिक चिकित्सा पद्धति का उपयोग किया जाता है।

दीर्घकालिक रोगियों की अपेक्षा तीव्र रोगियों में औषधियों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इन औषधियों द्वारा रोगियों की भ्रमासक्तियों और विभ्रमों में कमी आ जाती है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि औषधियों के सेवन से केवल ऊपरी लक्षणों का उपचार होता है। रोग के वास्तिविक उपचार के लिए मनोचिकित्सा बहुत आवश्यक होता है। मनोचिकित्सा रोगी को इस योग्य बना देती है कि वह अपनी विरूपित अभिवृत्तियों को सही कर सकें और रोगी सामान्य व्यक्तियों की भाति अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

8.3.5 स्वःमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविदलता का अर्थ क्या है ?
2. मनोविदलता को मानसिक ह्रास के रूप में किसने प्रदर्शित किया?
3. मनोविदलता शब्द किस भाषा से लिया गया ?
4. क्रेपलिन ने मनोविदलता को क्या नाम दिया ?
5. ब्लूलर किस देश से संबंधित मनोचिकित्सक था ?
6. मनोविदलता कितने प्रकार का होता है ?

8.4 व्यामोह विकृति का अर्थ:-

व्यामोह विकार से पीडित व्यक्तियों मे विभिन्न प्रकार की व्यामोह प्रतिक्रियांएँ देखने को मिलती है इसमें व्यक्ति अपनी चिन्ता के दमित तीव्र तनाव को भ्रमासक्तियों द्वारा दूर करने का प्रयास करता है। व्यामोह शब्द दो ग्रीक शब्दो से (Para + Nous), मिलकर बना है जिसका अर्थ गलत और मन है यानि कि गलत मन है। प्राचीन काल से ही व्यामोह शब्द का प्रयोग मानसिंक रोगो के लिए किया जाता है, हिप्पो केटीज इस शब्द का प्रयोग सभी प्रकार के पागलपन और मानसिक रोगी के लिए करते थे। परन्तु आज के समय मेंव्यामोह केवल मानसिक रोगी तक ही सीमित हो गया है जिसमें व्यक्ति की मानसिक दशा तो ठीक होती परन्तु उसमें अनेक प्रकार भ्रम उत्पन्न हो जाते है। व्यामोह का प्रमुख लक्षण उसका भ्रमासक्ति तन्त्र होता है जिसमें व्यक्ति को अपने जीवन की वास्तविकता को

स्वीकारने के लिए अनेको विभ्रमो से पीडित होता है। व्यामोह की स्थिति में भ्रमासक्तियों का स्वरूप अधिक तार्किक तथा स्थायी होता है।

कैमरान (1963) के अनुसार:- इस प्रकार का रोगी तनाव और चिन्ता से बचाव हेतु अस्वीकारीकरण और प्रेक्षपण करता है और फलस्वरूप इन रोगियों में व्यवस्थित व्यामोह के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। व्यामोह से पीडित सपूर्ण व्यक्तियों मे केवल 1 प्रतिशत लोग ही मानसिक चिकित्सालयों में भर्ती होते है अन्य रोगी अपना उचार घर मे रहकर ही करवाते है व्यामोह से पीड़ित व्यक्तियों की आयु 25 से 65 वर्ष होती है। व्यामोह रोग स्त्री एवं पुरूषो में लगभग बराबर मात्रा में घटित होता है।

8.4.1 व्यामोह विकृति के लक्षण:-

1. व्यामोह विकृति के लक्षण एक व्यक्ति मे सहसा ही उभरते नही देखे जाते बल्कि इन लक्षणों के उत्पन्न होने का प्रक्रम अति व्यवस्थित एवं दीर्धकालिक होता है। यह रोग रोगी के शैशवकालीन जीवन से संबंधित होता है।

2. इस रोग में रोगी को अपनी अविकसित क्षमताओं के प्रति मिथ्या धारणाओं पर अति अटूट् विश्वास होता है| वह अपनी मिथ्या धाराणाओ को ही सही समझता है जिससे उसमे अंहकारी एवं स्वार्थी होने की भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों का दूसरे व्यक्तियो पर विश्वास बहुत कम होता है और वह दूसरो को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है।

3. व्यामोह के रोगी यह भी समझने लगते है कि इस संसार में रहने वाले सभी व्यक्ति स्वार्थी, कठोर निष्ठुर व निर्दयी है और उसे पीडा व कष्ट पहुचँना चाहते है।

4. व्यामोह के रोगी में यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि दुसरे व्यक्ति उसकी महान उपलब्धियों, योग्यताओं और महानता की अलोचना करते है व उसके प्रति षडयन्त्र बना रहे है उसकी उपलब्ध्यो की प्रशंसा न करके उससे ईर्ष्या करते है।

5. इस रोग से पीडित व्यक्ति के सामजिक एवं आर्थिक स्तर पर मूलरूप से पास्परिक सबंध भी अत्यधिक संवेदनशील, असंतोषजनक आक्रोश जनक व विकृति जन्य हो जाते है।

6. व्यामोह के रोगियों में भ्रमासक्तियों का जाल इतना सुव्यवस्थित, संगठित, तर्कपूर्ण होता है कि रोगी को विश्वास होने लगता है कि वह जो कुछ कह रहा है वही सब सत्य है और इसके अतिरिक्त सब कुछ गलत है।

7. व्यामोह के रोगी की भ्रमासक्तियों का संबंध जायदाद, धन, दौलत, महत्वपूर्ण पद, धार्मिक विश्वासों आदि से संबंधित होता है। उदाहरण: एक बार प्रोफेसर ब्राउन ने सडक पर खडे एक सैलानी को अपनी कार में स्थान दे दिया। रास्ते मे बातचीत करते हुए सैलानी ने प्रोफेसर ब्राउन को बताया कि वह एक विश्वविघालय में अनुसधानकर्ता है और बेरोजगारी की समस्या पर अनुसंधान कर रहा है प्रो0 बाउन उस सैलानी की बातो से इतना प्रभावित हुए कि उन्होने उसे अपनी कक्षा के सामने व्याख्यान करने का निमन्त्रण दिया। जब अनुसंधानकर्ता समय पर नही पहुँचा तो उन्होने उसके विश्वविघालय को फोन किया विश्वविघालय के अधिकारियों ने प्रो0 को बताया कि इस नाम का कोई

व्यक्ति यहा कार्य नही करता है इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह सैलानी व्यामोह का रोगी और महानता भ्रमासक्ति से पीड़ित था।

व्यामोह अस्थायी मनस्पाती प्राय तात्कालिक रूप से उत्पन्न हो जाती है। रोगी कुष्ठा, दून्द्ध और दवाब से उत्पन्न प्रतिबल का सामना करने के लिए प्रतिरक्षा क्रिया तन्त्रो के रूप में असंगत भ्रमासकित्यां विकसित कर लेता है।

व्यामोह आवस्थी अनुस्तापी प्रतिक्रिया है जो प्रतिबल उपस्थित होने पर उत्पन्न हो जाती है और प्रतिबल के दूर हो जोने पर समाप्त हो जाते है।

8.4.2 व्यामोह के सामान्य रूप:-

1. उत्पीडन संबंधी व्यामोह:-

इस व्यामोह के अन्तर्गत रोगी में यह भ्रमासक्ति बनी रहती है कि उसके पडोसी, रिश्तेदार, व्यवसाय आदि से संबंधित व्यक्ति उसकी कुशलता और सफलता को देखकर तरह तरह की बाते बनाते रहते है और किसी गलत कार्य में फसा देना चाहते है। एक अटूट भ्रमसाक्ति बन जाती है जिससे कभी कभी रोगी शत्रुता के विचार से उन पर आक्रमण कर देता है व उनकी हत्या करने का प्रयास करने की कोशिश करता है |इस प्रकार के रोगियों में उत्पीड़न व्यामोह की प्रधानता होती हैं|

2. रोगो से संम्बधित व्यामोह:-

इस प्रकार के व्याहमोह के रोगियों में यह विश्वास दृढ रूप से पाया जाता है कि उसे कोई असाध्य रोग हो गया है। वह यह सोचने लगता है कि उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है वे रोग के उपचार के लिए अनेको डाक्टरों के पास जाते है परन्तु उन्हे यह पूर्ण रूप से विश्वास जो जाता है कि कोई भी चिकित्सक उसके रोग का उपचार नही कर पायेगा।

3. महानता संबंधी व्यामोह:-

महानता से संबंधी व्यामोह सभी प्रकार के रोगियों मे पाये जाते है। परन्तु कभी कभी रोग के आरम्भ से ही रोगी में विभिन्न प्रकार के महानता संबंधी विचारों का जन्म हो जाता है। इस प्रकार के रोगी अपने को महान् व्यक्ति समझने लगते है। इस व्यामोह से पीडित रोगी अपने आप को एक अति लोक प्रिय नेता, अभिनेता, गणितज्ञ, वैज्ञानिक डाक्टर, संगीतज्ञ, कलाकार, चित्राकर, इन्जीनियर, व करोड़ पति व्यक्ति आदि बताते हुए सुना जाता है।

4. कामुक व्यामोह (Erotic paranoia):-

ऐसे पीडित व्यक्ति में यह विश्वास दृढ हो जाता है कि विरोधी लिंग के व्यक्ति उसके ऊपर मोहित होते रहते है। इस प्रकार के रोगियों में लैगिकता संबंधी व्यामोह की प्रधानता अधिक होती है। यह रोगी समझने लगते है कि उनसे कोई युवक या युवती प्रेम करने लगा है। उदा. फिशर ने इस प्रकार के रोगी का वर्णन प्रस्तुत किया है। एक व्यक्ति को व्यामोह हो गया कि एक उच्च कुल की युवती उससे प्रेम करने लगी है। उसने अपनी इस प्रेमिका को प्रेम पत्र लिखा परन्तु उसका कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ तब उसने सोचा कि वह युवती उससे विवाह करना चाहती है। अतः उसने

अपनी तरफ से युवती के पिता को एक पत्र लिखा और कहा कि उनकी युवती उससे विवाह करना चाहती है। युवती के पिता ने इस युवक को मानसिक अरोग्यशाला मे चिकित्सा हेतु भेज दिया।

5. विवादी व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह मे रोगी विवाद संबंधी परिस्थितियों में घिरा रहता है। उसमे यह भ्रसासक्ति विश्वास बना लेती है कि उसे अपने अधिकारो के लिए अन्य लोगो से लडते रहना आवश्यक है। ऐसे रोगी निरन्तर मुकदमों में लीन रहते है। इनको मुकदमें बाजी या कानूनी झगडे करने का शौक होता है। वह अपने दोषो को अन्य लोगो पर आरोपित करते है।

6. ईर्ष्यात्मक व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह मे रोगी की यह धारणा बन जाती है कि वह एक महान व्यक्ति है। इसके कारण लोग उससे जलते है और प्रति ईर्ष्या की भावना रखते है। इस प्रकार के व्यामाहे मेंपति पत्नी आपस में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते है।

7. सुधारात्मक व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह रोगी मे सुधार संबंधी व्यामोह पाये जाते है इन योगियों की दृष्टि से दुनिया संकट से घिरी हुई है तथा आर्थिक समाजिक व राजनैतिक रूप से शीध्र सुधा होने की आवश्यकता है। रोगी यह मानता है कि वही इस संसार का सुधार कर सकता है।

8. धार्मिक व्यामोह:-

धार्मिक व्यामोह के रोगी अपने को परमात्मा का अवतार या भगवान का दूत या धार्मिक सुधारक समझते है। वे रोगी यह सोचते है कि मेरा जन्म संसार की रक्षा करने के लिए हुआ है। यह रोगी दूसरे लोगो का ध्यान आकर्षित करने के लिए धार्मिक उत्थान से संबंधित उपदेश भी देते रहते हैं। अनपढ अशिक्षित तथा पिछडें हुए समाज के व्यक्ति ऐसे धार्मिक व्यामोह से पीडित व्याक्ति की बाते ध्यान से सुनते है।

8.4.3 व्यामोह के कारण:-

1. जैविक कारण:-

कुछ विद्वाना का विचार है कि व्यामोह का कारण आंनुवशिकता और शरी संरचना संबंधी कारक है परन्तु यह विचार त्रुटिपूर्ण है एक अध्ययन में यह देखा गया है कि व्यामोह और वशानुक्रम कोई सबंधं नही है।

2. मनोवैज्ञानिक कारण:-

व्यामोह के उत्पन्न होने में मनोवैज्ञानिक कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण है-

1. दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकास:-

व्यामोह के रोगियों को बाल्यकाल में जब अत्यधिक संघर्षपूर्ण संवेगात्मक तनाव, चिन्ताये, दुविधापूर्ण स्थिति, विरोध प्रतिशोध जैसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो यह बाल्यावस्था की स्थिति मे ही अधिक शक्की, जिद्दी, एकान्तप्रिय या क्रोधशील हो जाते है तथा बड़े होने पर वह जीवन की कदु स्थितियो के कारण चिडचिडे और कदु स्वभाव के हो जाते है |उसमें स्नेह पूर्ण संबंधो तथा दूसरो व्यक्तियों के प्रति विश्वास का अभाव होता है। ऐसे रोगियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यधिक निरकुंशादी होती है तथा इनके घर का वातावरण भी अलोचनात्मक पूर्ण होता है। यह रोगी अपनी कमियों को दूसरो के ऊपर थोपता रहता हैं।

2. सफलता और हीनता की भावना:-

व्यामोह से पीडित रोगी का जीवन असफलताओं से पूर्ण रहता है यह सफलताएँ सामजिक, आर्थिक, व्यावसाहिक आदि किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो सकती है इन असफलताओं को कारण रोगी का अवास्तविक जीवन लक्ष्य तथा दूसरो के साथ मिलजुलकर न रह सकने की योग्यता आदि है।

नवफ्रायडवादियों के अनुसार व्यामोह का कारण असफलता, हीनता अपराध भावना है। ये रोगी अपनी हीनता भावना को छिपाने के लिए वह झूठी श्रेष्ठता भावना का जाल सा बना लेता है यह व्यक्ति दूसरे के मुख से अपनी प्रसन्नता सुनता चाहते है पर अलोचना सहन नही कर पाते है।

3. लैंगिक असमायोजन या कुसमायोजन:-

व्यामोह के रोगियों के लक्षणों की उत्पत्ति का कारण उनका लैगिंक असमायोजन है। सामान्य लैगिंक समायोजन का अभाव व्यामोह से पीडित रोगियो में होता है यह रोगी उच्च नैतिकता के वातावरण में पले हुए होते है यह रोगी लैगिंक सन्तुष्टि को पापमय या घृणा की दृष्टि से देखते है ऐसे व्यक्ति यदि विवाह करते है तो बहुत ही जल्दी तलाक ले लेते है।

फॉयड ने व्यामोह का मुख्य आधार दमित समजाति लैंगिकता को बताया है।

4. जीवन की वास्तविकता का अकुषल परीक्षण:-

बाल्यावस्था में जब व्यक्ति का जीवन की कठिनाइयों व कठोरतओं के प्रति परीक्षण अति निर्बल व निष्क्रिय रह जाता है, तब उसमें इस संबंध में आवश्यक व्यवहार कुशलताएँ विकसित नही हो पाती है ऐसी अकुशलता व अयोग्यता से उसमे आगे चलकर व्यामोह के लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

5. सुरक्षा का विस्तार:-

व्यामोह के रोगी में लक्षणो की उत्पत्ति तब होती है जब वह अपनी सुरक्षा का विस्तार करता है। व्यामोह से पीडित व्यक्तियों को हमेशा यह शंका रहती है कि कोई व्यक्ति उसका अहित न कर दें वह इसी भ्रम में दूसरो से दूर रहने लगता है जिससे उसे किसी प्रकार सहायता की आवश्यकता न पड़े।

सामाजिक कारण:-

व्यामोह से पीडित रोगी अधिकतर उच्च सामजिक आर्थिक स्तर के होते है इनका शैक्षिक स्तर भी उच्च होता है इनके जीवन लक्ष्य भी उच्च स्तर के होते है। जिनको कभी-कभी ये रोगी प्राप्त नही कर पाते है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जूझते रहते है और व्यामोह जैसे मानसिक विकार से ग्रस्त हो जाते ह। जब व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने में असफल हो जाता है ता उसमें नैराश्य का भाव उत्पन्न हो जाता है जो आग्र चलकर व्यामोह के लक्षण का रूप ले लेता हैं।

8.4.4 व्यामोह का उपचार:-

व्यामोह आवस्थाएँ कुछ दिनो तथा सप्ताह में स्वतः समाप्त हो जाती है रोगी को दूर करने के लिए अनेक औषधियों का उपयोग किया जाता है| रोग की प्रारम्भिक अवस्था में मनोचिकित्सा व विधुत आघात चिकित्सा लाभदायक होती है परन्तु रोग के बढ जाने पर मनोचिकित्सा की कोई भी पद्वति लाभकारी सिद्व नही होती है। ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए इन्सुलीन व्यावसायिक प्रणाली सामूहिक चिकित्सा, औषधि चिकित्सा सामजिक चिकित्सा आदि का प्रयोग किया जाता है।

व्यामोह के रोगी के रोगी ठीन होने की सम्भावना अपेक्षाकृत कम होती है व्यामोह के रोगियों को चिकित्सालय में भर्ती करना एक गम्भीर समस्या है उपचार काफी लम्बा चलता है।व्यामोह के रोगी को अस्पताल में रखना मुश्किल हो जाता है|

8.4.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:-

1. व्यामोह से क्या तात्पर्य है ?
2. व्यामोह का प्रमुख लक्षण क्या है ?
3. व्यामोह मे पीडित व्यक्तियों का कितने प्रतिशत भाग चिकित्सालय में जाते है ?
4. व्यामोह की प्रारम्भिक अवस्था में कौन सी चिकित्सा लाभदायक है?

8.5 सारांश

. मनोविदलता एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसके प्रभाव से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन होना प्रारम्भ हो जाता है इसमे व्यक्ति को अपने बारे सोचने की शक्ति समाप्त होने लगती है वह यह समझ नही पाता है कि वह वातावरण में उचित व्यवहार नही कर रहा है।

. स्विस मनोचिकित्सक ब्लूलर ने इस रोग को शिजोफ्रेनिया का नाम दिया। यह रोग एकल मनोरोग न होकर विभिन्न विकारों का सामूहिक रूप है।

. मनोविदलता नौ (9) प्रकार की होती है:- 1. सरल प्रारूप मनोविदलता 2. युवा विदलन हीवीफ्रेनिक मनोविदलता 3. कैटाटोनिक प्रारूप मनोविदलता, 4. व्यामोह पैरानायड प्रारूप मनोविदलता, 5. बाल्यकालीन

मनोविदलता, 6. तीव्र अविभेदित प्रारूप् मनोविदलता, 7. दीर्धकालीन अविभेदित प्रारूप मनोविदलन, 8. भाव प्रारूप मनोविदलन, 9 अवशिष्ट मनोविदलता।

. मनोविदलता के कारण तीन प्रकार के होते है:- 1. जैविक कारक, 2. मनौवैज्ञानिक कारक, 3. समाजिक कारक।

. व्यामोह विकार से ग्रस्त व्यक्ति अनेको प्रकार शंकाओं से ग्रस्त होता है। व्यक्ति तनाव की स्थिति में अनेक प्रकार भ्रमासक्तियों से ग्रसित हो जाता है जिनका दोषी दूसरे व्यक्तियो को ठहराता है के सामान्यतः आठ रूप होते है:- 1. उत्पीडन संबंधी व्यामोह, 2. रोगी से संबंधित व्यामोह, 3. महानता से संबंधी व्यामोह, 4. कामुक व्यामोह, 5. विवादी व्यामोह, 6. ईष्योत्मक व्यामोह, 7. सुधारात्मक व्यामोह, 8. धार्मिक व्यामोह।

8.6 शब्दावली

. मनोविदलता:-

यह शब्द एक मानसिक रोग है जिससे तात्पर्य खण्डित मन तथा विभक्त व्यक्ति होता है।

. भ्रमासक्तियाँ:-

किसी विषय व तथ्य के बारे गलत विचार व धाराएँ भ्रमासाक्तियाँ कहलाती है।

. व्यामोह:-
व्यामोह से पीडित रोगियो मे तनाव, दुश्चिन्ता के कारण भ्रमासक्तियों उत्पन्न हो जाती है इसे व्यामोह विकार कहते है।

8.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर -

. मनोविदलता का अर्थ व्यक्ति के व्यक्ति में दरार पडना है या फिर खण्डितमन अथवा अत्यधिक विद्यटित व विभक्त व्यक्तित्व होता है।

. मनोविदलता का मानसिंक हास के रूप में मोरेल ने प्रस्तुत किया।

. मनोविदलता 9 प्रकार के होते है।

. व्यामोह शब्द दो ग्रीक भाषा के शब्दो ;च्तंजदवनेद्धसे मिलकर बना है जिसका अर्थ गलत और मन है यानि गलत मन है।

. व्यामोह का प्रमुख लक्षण भ्रमासक्तियाँ विभ्रम है।

. व्यामोह से पीडित व्याक्त्यिों का 1प्रतिशत भाग ही मानसिक चिकित्सालय जाते है।

. व्यामोह 8 प्रकार के होते है।

. व्यामोह को प्रारम्भिक अवस्था में मनोचिकित्सा व आघात चिकित्सा अत्यधिक लाभदायक सिद्व होती है|

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

. Kapil, H.K. (2001)अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी, दास दिल्ली|

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

. मनोविदलता से क्या तात्पर्य है मनोविदलता के लक्षणो का वर्णन **कीजिये** |

. मनोविदलता कितने प्रकार की होती है मनोविदलता के उपचार की विधियों की विवेचना **कीजिये** |

. व्यामोह को परिभाषित कीजिए व्यामोह के प्रकारो की उदाहरण सहित व्याख्या **कीजिये** |

. व्यामोह के लक्षणों की विवेचित कीजिए तथा कारणो की विवेचना **कीजिये**|

इकाई 9. व्यक्तित्व विकृतियाँ : अर्थ, स्वरूप, प्रकार, कारक एवं उपचार (Personality Disorders:- Meaning, Nature, Types, Factors and Treatment)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 व्यक्तित्व विकार का अर्थ एवं स्वरूप
9.4 व्यक्तित्व विकार के प्रकार
9.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसके मानसिंक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनो ही पक्ष होते है यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अन्तक्रिया करते है व्यक्तित्व ना तो पूर्णत मानसिंक या मनोवैज्ञानिक होता है और न पूर्णत शारीरिक ही। व्यक्तित्व इन दोनो तरह के पक्षों का मिश्रण है।

जब किसी भी व्यक्ति में शारीरिक व मानसिक रूप में विकार उत्पन्न होने लगते है तब ऐसे विकारों को व्यक्तित्व विकार के रूप में जाना जाता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न् होने का कारण केवल शरारीरिक व मानसिक ही नही होता बल्कि व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है व्यक्ति के व्यवहार में यदि असमायोजन अत्यधिक होता है तब व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगते है। व्यक्तित्व विकृति वैसा विकृति है जो पर्यावरण को कुसमायोजित ढ़ग से प्रत्यक्ष करने तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है। इसके अर्न्तगत सम्बन्धित व्यक्ति जीवन में अपनी अत्यधिक सुःखवादी, आवेगी व समाज विरोधी इच्छाओं की पूर्ति निर्द्धन्द तथा निः कोच रूप से सम्पन्न करते देखा जा सकता है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत हम व्यक्तित्व विकार के स्वरूप व इनके प्रकारों, कारणो तथा उपचार का अध्ययन करेगें-

a)व्यक्तित्व विकार का अर्थ।

b)व्यक्तित्व विकार के प्रकार।

c)समाज विरोधी व्यवहार, लक्षण, कारण, उपचार।

d)बाल अपराध, कारण एवं उपचार

e)प्रौढ़ अपरोध व नव अपराधी।

f)कामुक विचलन, कामुक विचलन के कारण, कामुक विचलन के प्रकार एवं उपचार।

g)मद्यव्यसनिता।

h)मद्यव्सनिता के प्रकार।

9.3. व्यक्तित्व विकार का अर्थ एवं स्वरूप

मनस्ताप तथा मनोस्नायुविकृति व मनोविक्षिप्तता आदि मानसिक रोगो की तरह विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व विकारो की प्रतिक्रियाएँ भी दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकार के कारण उत्पन्न होती है मानसिक रोगो मे अनेक प्रकार के मानसिक एवं संवेगात्मक लक्षण पाये जाते है परन्तु व्यक्तित्व विकारों में इन लक्षणो के स्थान पर कुसमायोजित बाहा व्यवहार होता है। इसलिए व्यक्तित्व विकारो से ग्रस्त व्यक्तियों में न तो क्लेश अथवा विपत्ति की भावना रहती है और न ही वे स्वयं को मानसिक रोगी मानते है।

जब किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व मे विकार उत्पन्न होने लगते है तो उसका व्यक्तित्व विघटित् होने लगता है जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिंक स्थिति पर प्रभाव पडता है। परन्तु फिर भी यह व्यक्ति अपने आप को किसी भी तरह शारीरिक व मानसिंक रूप से रोगी नही मानते है व्यक्तित्व में विकार आने के कारण इनके सामजिक संबंधो में विखण्डन हो जाता है। परन्तु किसी भी प्रकार के भी विपत्ति के समय वह अडिग रहते है। और विपत्ति का सामाना करते रहते है।

किसी भी प्रकार के मनोस्नायुविकृति से गस्त होने पर व्यक्ति की मानसिक स्थिति खराब होने लगती है उसी प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार आ जाने पर उसके बाहा व्यवहार में भी परिवर्तन आने लगता है। वह समाज विराधी प्रतिक्रियाएँ करना आरम्भ कर देता है। जिससे उसका शारीरिक और मानसिंक सन्तुलन बिगडने लगता है और उसका व्यक्तित्व विकारों से ग्रस्त होने लगता है। डेविसन और निल के अनुसार "व्यक्तित्व विकृति, विकृतियों का विषय समूह है जो वैसे व्यवहारों एवं अनुभूतियों का स्थायी एवं अनम्य पैटर्न होता है जो सांस्कृतिक प्रत्याशाओ से विचलित होता है और तकलीफ या हानि पहुचाता है"।

9.4 व्यक्तित्व विकार के प्रकार

व्यक्तित्व विकारो को मुख्य रूप से पांच प्रकारो में बाटा जा सकता है।

1. समाज विरोधी विकृत प्रति क्रियाऐं।

2. बालापचार

3. प्रौढ अपराध एवं नव अपराधी

4. कामुक विचलन

5. मद्यव्यसनिता

1. समाज विरोधी मनोविकृति प्रतिक्रियाऐ ((Anti Social Psychopathic Reactions):-

समाज विरोधी व्यक्ति के व्यक्तित्व से तात्पर्य वैसे व्यक्तित्व से होता है जो न तो स्नायुविकृत होते है और जो ना ही मनोविकृत होते है, परन्तु यह सामाजिक रूप से अयोग्य होते है। इन व्यक्त्यिों का प्रमुख लक्षण दोषपूर्ण नैतिक विकास होता है वह सामाजिक नियमों के अनुसार कार्यन नही कर पाते है। वह समाज के अनुशासित नियमों पर नही चल पाते है और हमेशा किसी न किसी प्रकार की मुसीबतों व जोखिमों से घिरे रहते है। अतीत के बुरे कटु अनुभवो व दण्डों का भी ऐसी व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

सामान्य अवस्था में ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक व मानसिक रूप से बीमार नही कहा जा सकता है परन्तु ऐसे व्यक्ति समाज में शांति भंग करने वाले दंगा करने वाले तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को बर्वाद करने वाले होते है। कारसन तथा बुचर (1992) के अनुसार समाज विरोधी विकृति वाले व्यक्ति बिना पछतावा या किसी के प्रति निष्ठा दिखाये अपने आक्रमक एवं समाज विरोधी व्यवहार द्वारा दूसरो के अधिकारो का हनन करते है।

समाज विरोधी व्यक्तिव के व्यक्ति बिना किसी अवरोध अनुभव किये ही समाज विरोधी कार्य करता है।

व्यक्तित्व विकारो से पीडित व्यक्तियों का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है परन्तु ऐसे लोग छिपे रूप से समाज में रहते है और उनका पता नही लग पाता क्योंकि ऐसे अनेक व्यक्ति बाह्य रूप से कुशल कलाकारों व सफल नाटककारों, अनुउत्तर दायी राजनीतिक, कपटी व्यापारियों, कपटी वकील, कुटिल वैश्याओं तथा ठग, चोर, बलात्कारी, एवं अपराधियों के रूप में समाज में खुले रूप से अपनी सम्बन्धित गतिविधियों में व्यस्त रहते है। महिलाओं की अपेक्षा पुरूष ऐसे विकृत व्यवहार से अधिक पीड़ित होते है यह व्यवहार प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा किशोरो में अधिक पाया जाता है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओ के लक्षण:-

समाज विरोधी व्यक्ति सामान्य तौर पर ऊपर से बुद्विमान, चतुर, आकर्षक, ईमानदार दिखाई प्रतीत होता है परन्तु वे सही रूप में अपरिपक्व, अनुत्तर दायी और आवेगशील होता है। इस प्रकार के व्यक्ति छोटी छोटी बातो पर उत्तेजित हो जाते है और समाज के विरोध में व्यवहार करने लगते है। इन सभी समाज विरोध लक्षणो को हम 10 वर्गो में आसानी से विभक्त करके समझ सकते है।

1. अपर्याप्त अन्तरात्मा विकास (**Inadequate conscience development)** :-

इस प्रकार के व्यक्ति समाज के धार्मिक, सामजिक नैतिक मूल्यों को समझ नही पाते है और उनको स्वीकार नही करना चाहते है इन व्यक्तियों का बौद्विक सामाजिक विकास नही हो पाता है इनकी अन्तरात्मा अपर्याप्त रूप से

जाग्रत होती है जिससे वह समाज के विरूद्व कार्य करने मे भी असमर्थ नही होते है यह व्यक्ति अपने गोल मोल व लच्छेदार बातों से दूसरो को धोखा देने मे कामयाब हो जाते है इनकी दिखावटी बातो की वजह से व्यक्ति इन पर अत्यधिक विश्वास करने लगता है। जिसका लाभ उठाकर ये व्यक्तियों को धोखा देने में सफल हो जाते है।

2. आत्मकेन्द्रित, आवेगी और अनुत्तरदायी (**Egocentric, Impulsive and Irresponsible**) :-

इस प्रकार के व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों की आवश्यकताओ, जरूरतो व अधिकारो की कोई परवाह नही होती है। ऐसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वंय कोई कार्य नही करना चाहते है। बल्कि यहा तक कि वह अपनी जीविका के लिए भी स्वंय नही कमाना चाहते है वह हमेशा दूसरो से कुछ न कुछ लेना चाहते है परन्तु देना नही चाहते है ऐसे व्यक्ति तनावपूर्ण स्थितियों को अत्यधिक समय तक नही झेल पाते है और न ही किसी प्रकार का कोई ठीक निर्णय कर पाते है। इन व्यक्त्यिों की निर्णय शक्ति अत्यधिक कमजोर होती है।

3. सुखवाद एवं आवास्तविक लक्ष्य:-

ये व्यक्ति अपने अतीत व भविष्य के बारे मे सोच विचार किये बिना जीते है। इनका मानना होता है कि अतीत और भविष्य के बारे में सोचकर हम अपना वर्तमान क्यो बर्वाद करे। ये व्यक्ति तात्कालिक यानि वर्तमान के सुख को नही छोडना चाहते है वे सभी ब्राहा वस्तुाओं व चीजो का उपयोग तात्कालिक लाभ व सन्तुष्टि के लिए करते है इस प्रकार के व्यक्त्यिों का व्यक्तित्व स्थायी नही होता है और इनमें सहनशीलता की भावना भी कम होती है ऐसे व्यक्यिों का एक जगह मन नही लगता है वह अपने व्यवसायों को भी जल्दी जल्दी बदलते है ऐसे व्यक्त्यिो में एक ही दिन में कुछ बनकर दिखाने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसे व्यक्तियों में असामान्य कामुक व्यवहार अधिक पाया जाता है।

4. दुष्चिंता अथवा अपराध भावना का अभाव (**Lack of Anxiety of Guilt feeling) :-**

जब व्यक्ति में तनाव व दुश्चिन्ता की भावना उत्पन्न होती है तो यह आसानी से हार मान कर बैठ नही जाते है बल्कि अपने आक्रमक व्यवहार द्वारा इन्हे समाप्त करने का प्रयास करते है दूसरे व्यक्तियों के प्रति शत्रुता व आक्रमणकारी व्यवहार करने पर इनमें कोई अपराध भावना उत्पन्न नही होती है एक तरफ दुश्चिनता व अपराध भावना का अभाव वही दूसरी तरफ ईमानदारी, दिखावे की सरलता के कारण इन व्यक्तियों पर शक करने की शंका कम हो जाती है।

5. गलतियों से सीखने की अयोग्यता:-

ऐसे व्यक्ति अपनी जीवन की गलतियों व अनुभवो तथा दण्डों से कुछ भी सीखने का प्रयास नही करते है और गलती पर गलतियां करते रहेते है ऐसे व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करनें में हेर फेर करने में माहिर होते है और सजा से भी आसानी से बच निकलते है। वे ऐसा सोचते है कि उन्हे कभी भी अपने दुष्कर्मो का परिणाम नही भुगतना पडेगा और घोर कृत्य अपराध करते जाते है।

6.. स्वार्थ सिद्धि के लिए नाटक रचना:-

इस प्रकार के व्यक्तियों में आकर्षक, प्रिय, सुन्दर, बनावटी दिखने का गुण भरपूर रूप में होता है जिससे वह दूसरों को प्रभावित करके अपना कार्य करने में सफल हो जाते है।

7. दोषपूर्ण सामाजिक संबंध (**Defective Social Relationship**) :-

ये लोग प्राय कठोर, अकृतज्ञ, असहानुभूति और पश्चातापहीन होते है इन लोगो के मित्र भी नही होते है और यह समूह के सदस्यों के साथ भी कोई संबंध नही रखना चाहते है।

8. संस्थापित सत्ता और अनुषासन का अस्वीकरण :-

इस प्रकार के व्यक्ति ऐसा व्यवहार करते है जैसे समाज द्वारा बनाये गये नियमो का कोई भी अस्तिव नही है जैसे यह नियम निर्देश इनके लिए नही बनाये गये है और इनके विरोघ में कार्य करते रहते है। स्थापित सत्ता के प्रति शत्रुता की भावना रखते है और उनके विरोघ में आवेगपूर्ण, शत्रुता पूर्ण अपराघिक कार्य करते है

9. युक्तिसम्मतकरण की योग्यता (**Ability to Rationalize**) :-

ये व्यक्ति अपने द्वारा किये गये गलत कार्यो को दूसरो पर आरोपित करते है इनके भीतर अपने व्यवहार के प्रति अर्न्तदृष्टि का अभाव होता है। ऐसे व्यक्ति झूठ बोलने से भी पीछे नही हटते है जबकि उन्हे पता होता है कि एक न एक दिन उनकी पोल खुल जाएगी।

10. दूसरो को सतानें हताष करने एवं संकट मे डालने की प्रवृति:-

इस प्रकार के व्यक्ति दूसरे व्यक्यिो या परिवार के सदस्यों पर बोझ बनने लगते है और उनके लिए दुख व समास्याऐ उत्पन्न करते है ऐसे व्यक्तियों को सुधारना असम्भव नही परन्तु कठिन अवश्य होता है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारण:-

समाज विरोधी मनोविकृति प्रतिक्रियाओं के कारणो के लिए कुछ वैज्ञानिको का मानना है कि किसी शरीरिक विकृति के कारण समाजविरोधी विकार उत्पन्न होते है वही दूसरी तरफ कुछ वैज्ञानिक इसे पारिवारिक दोषपुर्ण तथा समुदाय के रूप में होने वाली प्रतिक्रियाओं के रूप में मानते है।

1. जैविक कारक
2. पारिवारिक कारक
3. मानसिक कारक
4. सामाजिक संस्कृति कारक

1. जैविक कारक (Biological Factors):-

समाज विरोधी व्यक्ति आरम्भिक जीवन से ही आवेगशील, तोडफोड करने वाले, असहनशील, उत्तेजित व्यक्तित्व के होते है। इसका कारण तंत्रिका तंत्र के अन्तबार्धा और उत्तेजक के प्रक्रियाओं में असन्तुलन है इस असन्तुलन का कारण जन्मजात क्षति भी हो सकती है। मैकमिलन तथा कोफोड (1984) के अनुसार ऐसे लोगों में समाज विरोधी

व्यवहार करने की जन्मजात प्रवृत्ति मूल रूप से जीन्स द्वारा उनको प्राप्त होती है और जिन व्यक्तियों में नई नई उत्तेजनाओं के प्रति अधिक जिज्ञासा होती है और जो नये नये कारनामें करके सुख की अनुभूति प्राप्त करना चाहते है। उनमें समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाऐ अत्यधिक देखने को मिलती है। लेकिन जैविक कारको की भूमिकाओं में इस कारण से संदेह होने लगता है कि क्योंकि बच्चों में प्राय उनके जैसे मनोविकृत शीलगुण देखने में नही आया है।

समाज विरोधी व्यक्तियों मे संज्ञानात्मक कार्यो की अपूर्णता पाई जाती है इसलिए वह बिना किसी हिचक के समाज विरोधी कार्य करते रहते है

2. पारिवारिक कारक:-

समाज विरोधी बालाको के माता पिता मे अधिकार, स्वतन्त्रता एवं उपलब्धि के लक्ष्यों के संबंध में मतभेद एवं द्वन्द पाये जाते है। मैककार्ड तथा मैककार्ड (1964) के अध्ययनो से स्पष्ट होता है कि जब बच्चो को माता पिता द्वारा बात बात पर तिरस्कृत किया जाता है व माता पिता द्वारा बच्चो को पर्याप्त मात्रा के प्यार नही मिलता है तो इस स्थिति में बच्चे समाज विरोधी प्रतिक्रियाऐं करने लगते है।

इस प्रकार के बालको के पिता का स्वभाव अत्यधिक कठोर और कटु होता है तथा बहुत अलग अलग रहने वाले, व्यस्त रहने वाले होते है जिससे बच्चो में कभी कभी भय भी उत्पन्न होने लगता है। इसके विपरीत माताएं लाड प्यार करने वाली सुख प्रदान करने वाली होती है। यहाँ पर माता-पिता अपने बच्चो से दूरी व तटस्थता का संबंध रखते है व उनके प्रति प्रेम भाव का आभाव रखते है ऐसे व्यवहार से बच्चो में व्यस्कावस्था आने तक समाज विरोधी कार्य करने की लालासा अत्यधिक विकसित हो जाती है। ग्रीर (1964) के अध्ययनो से स्पष्ट होता है कि समाज विरोधी व्यक्तित्व एक समूह में 60 प्रतिशत व्यक्ति ऐसे थे जिनके माता पिता बचपन में ही खो चुके थें माता पिता के न होने कारण इनका सांवेगिक विकास नही हो पाता है जिसके कारण समाज विरोधी व्यक्तित्व विकसित होने लगता है।

समाज विरोधी व्यक्तित्व का विकास दोषपूर्ण परिवारिक अन्त क्रियाओं से भी उत्पन्न होता है।

3. मानसिक कारक:-

समाज विरोधी व्यक्तियों का एक बड़ा प्रतिशत एवं मध्य वर्ग उच्च वर्ग एवं में पाये जाते है ये परिवार उत्तम आवसीय क्षेत्रो मे निवास करते है। विल्किन्स (1961) के अनुसार समाज विरोधी व्यक्तियों का अपना एक विशेष प्रकार का चाल चलन व जीवन शैली होती है जिसके अनुसार वह कार्य करते है इनके व्यवहार को परिवर्तित करना कठिन होता हैं। ऐसे व्यक्ति अपने द्वन्दो और आवेगो को दुश्चिन्ता द्वारा कम करने के बजाय आक्रमणकारी, व विध्वंसक व्यवहार करना अधिक अच्छा समझते है। आरम्भिक जीवन में कभी-कभी एक बालक किसी एक दुराचारी परन्तु सफल कहे जाने वाले व्यक्ति के प्रति भी अचेतन रूप से तदात्मीकरण करते देखा जाता है। ऐसी स्थिति में उसमें अपराध के लिए प्रश्चित करने की भावना विकसित नही हो पाती है।

4. सामाजिक सांस्कृतिक कारक:-

समाज विरोधी व्यक्तित्व निम्न सामाजिक आर्थिक समूहो में अत्यधिक तेजी से बढता है समाज विरोधी व्यक्तियों पर समाज में रहने वाले सदस्यों का व्यवहार भी निर्भर करता है कि उसका अपने साथ के लोगो के साथ कैसा व्यवहार है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के उपचार:-

समाज विरोधी मनोविकृती के व्यक्ति मनस्तापी नही होते है इनको मानसिक अस्पताल में भरती नही किया जाता है। इनका उपचार करना अत्यधिक कठिन होता है कुछ शारीरिक अंगो से संबंधित कारक जिनका उपचार करना असम्भव हैं इस कार्य को और जटिल बना देते है इन व्यक्यिो के उपचार में सबसे बडी समस्या इन व्यक्तियों की अभिवृति है जो व्यक्ति बदलना नही चाहते है।

समाज विरोधी व्यक्ति के उपचार में वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, औषधि चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्व हुई है।

वैयक्तिक चिकित्सा में चिकित्सा सत्र के दौरान पीडित व्यक्ति तथा एक चिकित्सक होता है जो रोगी से समस्या के प्रत्येक पहलु को बताने के लिए कहता है और विचार विमर्श करता है इस चिकित्सा की सफलता रोगी के ऊपर निर्भर करती है कि वह चिकित्सक के साथ कितना सहयोग करता है सामूहिक चिकित्सा मे समाज विरोधी व्यक्त्यिों का उपचार समूह व टोली बनाकर किया जाता है इसमे कई चिकित्सक होते है जिनके सुझावो की सहायता से व्यक्तियों का उपचार आसानी से किया जाता है। समाज विरोधी व्यवहार को हटाने, नियंत्रित करने मे दण्ड बहुत अधिक प्रभावकारी सिद्व नही होता है बल्कि समाज विरोधी व्यवहार को दूर करने के लिए व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में रखना आवश्यक होता है जहां व्यवहारात्मक नियंत्रण संभव हो ताकि वह आत्मध्वसात्मक व्यवहार न कर सके।

समाज विरोधी व्यक्तियों को सुधारने के लिए प्रशान्तक औषधियें का भी उपयोग किया जाता है जिससे व्यक्ति आक्रमणकारी व्यवहार न करे। कभी कभी ऐसे व्यक्त्यिों को नियंत्रित करने के लिए विधुत चिकित्सा का भी उपयोग किया जाता है परन्तु यह लाभकारी सिद्व नही हो पाती हैं

मनेविश्लेषण एवं सम्मोह विश्लेषण विधि भी अधिक प्रभाव कारी सिद्व हुई है। समाज विरोधी व्यक्त्यिों के असामान्य व्यवहार को दूर करने के लिए कई प्रकार को चिकित्सा विधि उपलब्ध है। अधिकतर समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपनेआप 40 साल से आगे आयु उग्र बढ़ने पर अपने समाज विरोधी व्यवहार को अनुचित समझकर छोड़ देते है उम्र बढ़ने के साथ ही इन व्यक्तियों में सामाजिक परिपक्वक्ता और सूझ विकसित हो जाती है। जिसके फलस्वरूप समाज विरोधी कार्यो में कमी आ जाती है। ऐसे व्यक्तियों को अन्स्मित मनोविकृत व पके हुए मनोविकारी (Burned Out Psychopath) कहा जाता है ऐसे व्यक्ति इस उम्र मे पहुचने से पहले काफी तबाही मचा चुके होते है व बर्बाद हो चुके होते है।

2. बालापचार ((Burned Out Psychopath):-

बालपचार 18 वर्ष से कम आयु के लडकों एव लडकियों का ऐसा व्यवहार है जो हमारे समाज द्वारा स्वीकार्य नही है। भारतीय दण्ड विधान के अनुसार 7 वर्षसे 17 वर्ष तक का अपराधी बाल अपराध के अर्न्तगत आता है कानून

के दृष्टिकोण से कानून विरोधी कार्य अपराध है। जबकि सामाजिक दृष्टि कोण से समाज के विरोध में किया गया कोई भी कार्य अपराध की श्रेणी में आता है सात से अधिक परन्तु बारह वर्ष से कम आयु वाले ना समझ बालको को भारतीय विधान धारा 83 के अनुसार अपराधी नही माना जाता है।

Reformatory School Acts;1967 के अनुसार बाल आपराधियों की अधिकतम आयु 16 वर्ष है सामान्य रूप से बाल अपराधियों की आयु 17 वर्ष तक होती है।

आज हमारे देश में बाल अपराधियों की संख्या लाखो में है वही अमेरिका में बाल अपराधियों की संख्या 10 लाख से ज्यादा है बाल अपराध चोरी, हत्या, बलात्कार, सेधंमारी और डकैती आदि जैसे अपराध 18 वर्ष की कम आयु के युवकों द्वारा किया गया व्यवहार है जो समाज द्वारा मान्य नही होता है इस व्यवहार के लिए चेतावनी दी जाती है। दण्ड दिया जाता हे या सुधरात्मक कार्य किया जाता है।

बाल अपराधियों में स्त्री की अपेक्षा पुरूषों में अपराध करने की प्रवृत्ति अत्यधिक पाई जाती है।

कारण:-

बाल अपराध के अनेक कारण हो सकते है इसे निम्नाकिंत रूप में बाटा गया है-

1. अतिव्यापक विकृतियां:-

   अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार बाल अपराधियों का वर्गीकरण कई प्रकार की विकृति के आधार पर किया जा सकता है।

1. शारीरिक विकृतियां:-

एक प्रतिशत बाल अपराधियों के आसामान्य व्यवहार का कारण मस्तिष्क विकार होते है जिनके कारण बालक, सक्रिय , आवेगपूर्ण तथा सवेगात्मक रूप से अस्थिर होते है आवेश में आकर अपराध करने के पश्चात इनमें अपराध भावना उत्पन्न हो जाती है।

2. मानसिंक रूप से मंदित बाल अपराधी:-

बाल अपराधियों ने अपराध का मुख्य कारण निम्न बुद्वि का होना होता है। जब बालकों में बुद्वि की मात्रा सामान्य नही होती है तब बालक को यह ज्ञात नही हो पाता है कि वह जो व्यवहार कर रहा है वह समाज द्वारा मान्य है कि नही, उसे यह स्पष्ट नही होता है कि वह कोई घोर अपराध कर रहा है।

3. मनस्ताप और मनोविक्षिप्तता:-

मानसिंक रोगो से ग्रस्त व्यक्ति भी बाल अपराधी और अपराधी बन जाते है। संपूण बाल अपराधियों में लगभग 5 प्रतिशत तक मनस्ताप से पीडित व्यक्ति अपराधी होते है। इसी प्रकार संपूर्ण बाल आपराधियों में 5 प्रतिशत अपराधी मनोविक्षिप्तता रोगो से पीडित होते है मनोग्रस्ताबध्यता मनस्ताप चोरी करने वाले अपराधियों में अधिक पाया जाता है।

4. तंत्रिकातापी बालपचारी:-

10 से 15 प्रतिशत बाल अपराधियों के व्यवहार का संबंध तंत्रिकातापी से होता है इस प्रकार के बालक अपराध करने से पहले अपने विचारो से लडते है और कार्य कर लेने के बाद अत्यधिक अपराध भावना का अनुभव करते है।

2. विकृतिजनक पारिवारिक सम्बन्ध:-

विकृति जनक पारिवारिक संबंधो के अनेक रूप हो सकते है।

1. भग्न परिवार ((Broken Homes):-

भग्न परिवार उस परिवार को कहते है जिससे बालक अपने माता पिता को तलाक, मृत्यु व परित्याग के कारण खो देते है जिसके कारण उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न होने लगती है इसके कारण वह आसामाजिक कार्य करने लगते है। बार्कर एवं ऐडम्स (1962) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दो तिहाई बच्चे भग्न परिवार से आते है।

2. सौतेले माँ-बाप:-

परिवार में सौतेले मां बाप का होना भी अपराध का बडा कारण होता है। सौतेले मां बाप अपने बच्चो के साथ पक्षपात का व्यवहार करते है सौतेली मां अपने बच्चो को अधिक तथा दूसरे सौतले बच्चो को कम प्यार देती है जिसके कारण बालक पक्षपात की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं और अपराध करते रहते है।

3. पैतृक अनुपस्थितता ((Parental Absenteeism) :-

कुछ माता पिता अपने व्यवसाय व नौकरी के कारण अधिकतर समय व्यस्त रहते है व बाहर रहते है जिससे माता पिता व बालको के संबंधों में दूरिया आने लगती है माँ बाप अपने बच्चो को समय नही देते है जिसके कारण बच्चे असुरक्षित महसूस करने लगते है ओर मां-बाप तथा बच्चो के संबंध कटु हो जाते है। जिसके कारण बच्चे अपराध से संबंधित क्रियायें करने लगते है।

4. माता पिता द्वारा तिरस्कार व दोषपूर्ण अनुषासन:-

जिन माता-पिता द्वारा बच्चो का तिरस्कार किया जाता है उनके बालकों में बाल अपराध के गुण अत्यधिक उत्पन्न होते है बालको के परिवार का अनुशासन यदि दोषपूर्ण होता है। तो बच्चे बिगड जाते है अगर उन्हे अनुशासन के माहौल में नही रखा जाता है तो वह अपराध करने के लिए अग्रसर हो जाते है।

5. पारिवारिक विघटन:-

जिन परिवारों में विघटन की स्थिति पायी जाती है उन परिवारों के बच्चे अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते है।

3. सांस्कृतिक कारक:-

इस श्रेणी के बाल अपराधी ऐसे समूह से संबंधित होते है जिनके नैतिक मूल्य सामान्य जनसंख्या के अनुरूप नही होते जिन कार्यो को समाज अपराधी प्रवृति का मानता है इस अवसंस्कृति व्यक्ति उसे अच्छा समझते है।

1. समाज द्वारा परित्याग:-

16 से 20 वर्ष की आयु के ये युवक और युवतियां योग्यता अथवा अभिप्रेरणा की कमी के कारण अपने स्कूल अथवा कालेज में वाछनीय शैक्षिक योग्यता प्राप्त नही कर पाते है। जो शैक्षिक योग्यता प्राप्त कर लेते है तो वेकारी की समस्याएं कुण्डा उत्पन्न कर देती है जब ऐसे बालको का समाज द्वारा परित्याग कर दिया जाता है तब उत्पन्न कुण्ठा से आसामाजिक कार्य करने लगते है। जैसे बेबात की लड़ाई झगड़ा, तोड़ फोड़ दलबन्दी आदि है।

2. बालापचारी गिरोह:-

बाल अपराध का जन्म शहर की गन्दी वस्तियों में होता है। इन क्षेत्रो मे रहने वाले व्यक्त्यिों की निर्धनता और अपर्याप्त निर्वाह परिस्थितियां कुण्ठा ओर असन्तोष उत्पन्न करती है। बालको में समाज के प्रति नाकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न होने लगती है।

लडकियों को भी इन बालापचारी गिरोहो में भरती किया जाता है।अमेरिका में लडकियों के अब अलग गिरोह बनने लगे है। यह भी पुरूष गिरोहो की भांति संभ्रमित अक्रोशी और लडाकू लडकियों के लिए अपना एक अलग संसार प्रदान करते है।

4. आर्थिक कारक:- बाल अपराधो में आर्थिक कारक सहायक होते है।

1. निर्धनता:-

बर्ट (1948) के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बाल आपराधियों में आधे आपराधी निर्धन परिवारो से आते है। निर्धनता भी बाल अपराधो को जन्म देती है।

2. भुखमरी:-

आज समाज में इतनी अधिक निर्धनता फैल रही है कि लोग भूख से मर रहे है खाने को खाना नही है जिससे व्यक्ति अपराध करने के लिए मजबूर हो जाते है।

3. बेरोजगारी:-

बेरोजगारी जैसी घातक समस्या भी अपराध करने के लिए मजबूर कर देती है। बेरोजगार व्यक्ति को रोजगार न मिलने की वजह से उनका मानसिक सन्तुलन बिगडने लगता है। उन्हे यह ज्ञान नही हो पाता है कि वह जो काय कर रहे है वह गलत है या सही।

4. अत्यधिक प्रतिबलक स्थितियाँ:-

कभी कभी कुछ अनुशासनहीन, अल्पबुद्वि, आवेगोशील व अपरिपक्व बालक अचानक घोर प्रतिबलों जैसे मा या बाप की एकाएक दुखद मृत्यु, परिवार से बिछुडना और निर्धनता के जीवन के शिकार बन जाते है। अकेलेपन में वह कभी कभी सुखी जीवन व अन्य तुच्छ प्रलोभन के कारण अपराधी व्यवहार के जाल में फस जाते है।

आज के युग में टेलीविजन के प्रोग्रामों के माध्यम से बालको को व नवयुवकों के कोमल मन पर अपराध प्रवृति अचेतन रूप से शीध्र घर करती हुई देखी जाती है टेलीविजन के माध्यम से अपराध जैसे घोर कृत्य नवयुवको-नवयुवतियों के सामने पेश किये जा रहे है जिससे अपराध का प्रचलन बढ रहा है। फिल्मों, नाटको में दिखाये गये अपराधी दृश्यों व कृत्यों को व्यक्ति अपने जीवन में ग्रहण कर अपराध की ओर अग्रसर हो रहे है।

उपचार:-

सर्वप्रथम ऐसे बालको को उनसे संबंधित अपराधी गिरोह से अलग रखना होता है फिर उन्हे सुधार गृहो व प्रशिक्षित लोगो की देख रेख में रखने की आवश्यकता होती है ताकि उन्हे मनोवैज्ञानिक परामर्श व व्यवसायिक प्रशिक्षण मिल सके ताकि वह अपने जीवन के महत्तव को समझ सके और अपने व्यवहार, लक्ष्यों और क्रियाओं को एक नया मोड दे सके।

अपराधी बालक अति कठोर तथा असाध्य प्रकृति वाले होते है जिनमें कुछ गम्भीर अपराधी, घातक अपराध करते है जैसे हत्या, डकैती, तस्करी, बालात्कार आदि तथा इसके विपरीत कुछ बालक साधारण अपराध करते है जैसे स्कूल से भाग जाना, घर छोडकर चले जाना, मादक औषधियों का सेवन, लैगिक व्यवहार आदि साधारण अपराधियों और गम्भीर अपराधी को उपचार हेतु अलग रखा जाता है। अपराधी बालकों को पुलिस द्वारा पकडे जाने के बाद उन्हे परिवीक्षा ग्रह में रखा जाता है। ब्लेक (1967) के अनुसार 48 प्रतिशत व्यक्तियों के अपराध करने में सुधार देखा गया है।

परिवीक्षा ग्रह में उन्हे व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है और उनके व्यवहार को संन्तोष जनक बनाने का प्रयास किया जाता है। जिससे अपराधी बालक के व्यक्तित्व का पुनगर्ठन व पुनर्स्थापन होता है।

बाल अपराधी के जीवन स्तर में सुधार माता पिता के शिक्षण व विघालय में स्वास्थ्य कार्यक्रम बाल आपराध के नियंत्रण के लिए लाभकारी है मनोचिकित्सा व समाज सापेक्ष चिकित्सा उपयोगी सिद्व हुई है।

3. प्रौढ अपराध और नव अपराधी:-

प्रौढ़ अपराध की जडे कभी कभी बचपन में होती है परन्तु सदैव ऐसा नही होता बहुत से बाल अपराधी प्रौढ अपराधी नही बनते और बहुत से प्रौढ़ अपराधी पहले बाल अपराध नही रहे होते है।

असामाजिक कार्य भी अलग अलग प्रकार के होते है हो सकता है जो कार्य समाज के नियमों के विरूद्व हो वह अपराधी को असामजिक कार्य लगते ही न हो। कुछ व्यवहार हमारे समाज में पूर्णतः स्वकीकार नही किये जाते है।

कभी कभी व्यक्ति अपने जीवन में एक अपराध करके ही इस श्रेणी में पहुँच जाता है और उसकी जीवन शैली का एक रूप बन जाता है।

नव अपराधी व्यक्ति की धन में रूचि होती है जिसके कारण वह अपराध करते है यह व्यक्ति अपराध रोमांच के लिए करते है यह रोमाच ऐसे निषिद्व कार्य करने से उत्पन्न होता है जो तात्कालिक क्षणों को तीव्र बना देते है यह व्यक्ति अपराध करने से पहले कोई योजना नही बनाते है। यह अपने द्वारा किये गये अपराधो के परिणाम का कोई पूर्वाभास नही होता है कि परिणाम कितना घातक सिद्व हो सकता है इनका उददेश्य किसी भी तरह धन कमाना होता है।

कारण:-

बालापचपार की ही तरह प्रौढ अपराधी व नव अपराधी में पस्स्थिितयों से संबंधित प्रतिबल व आन्तरिक तनाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होते है। अत्यधिक प्रतिबल व आन्तरिक तनाव के कारण अपराध करने की प्रवृति तीव्र हो जाती है सामान्य व्यक्तियों के द्वारा अपराध एक बार किया जाता है परन्तु जब ये अपराध बार बार होने लगते है तो वह अपराध न रहकर महाअपराध की श्रेणी में आ जाता है। अत्यधिक मदिरापान का सेवन करना भी अपराध का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

उपचार:-

इसके उपचार व निरोध के लिए उन्ही विधियों का उपयोग किया जाता है जिनका प्रयोग आसामान्य व्यवहार के लिए किया जाता है जैसे अस्पतालों मे भरती करना, आयुवैज्ञानिक चिकित्सा तथा मनोचिकित्सा उपलब्ध करना, अस्वस्थ व्यक्तित्व और प्रवृतियों की समय रहते पहचान करना, अवांछनीय परिस्थितियों में सुधार करना आदि। आज का कानून अपराधियों के पुर्नवास से कोई रूचि नही रखता है दूसरी और एक बार दण्डित हो जाने के बाद अपराधी को समाजस्वीकार नही करता अपराधियों को सुधारने के लिए आवश्यक है कि ऐसे अपराधियों को समाज मे सम्मानजनक स्थान प्रदान किया जाय। 40 से 70 प्रतिशत दण्डित अपराधी पुन अपराध करने के लिए विवश हो जाते है।

4. लैंगिक विपर्याय या कामुक विचलन ((Sexual Perversions or Deviation)

जब एक व्यक्ति का जीवन प्राकृतिक व जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल व उनके अनुरूप बना रहता है। तब तक उसमें मैथून तथा उससे संबंधित पूर्व आनन्द क्रीडा दोनो का स्वरूप सामान्य बना रहता है, परन्तु जब व्यक्ति का लैंगिक जीवन कुछ व्यक्तिगत, समाज, सांस्कृतिक कारणो से, प्राकृतिक व जैविक आवश्यकताओं की समयानुकूल आवश्यक सन्तुष्टि से अत्यधिक विचलित होने लगता है तब लैंगिक विचलन उत्पन्न होने लगता है।

एक व्यक्ति अपने लैंगिक जीवन में विरोधी लिंग के प्रति आर्कषित होता है प्रत्येक व्यक्ति में लैंगिक इच्छाएं होती है जिनकी पूर्ति वह अपने भिन्नलिंग वाले के साथ करता है। लैंगिक इच्छाओं को दमन, अवदमन समापन नही होता है लैगिंक क्रियाओं की सन्तुष्टि के मार्ग में जब बाधाएँ उत्पन्न होती है तब उससे संबंधित व्यक्ति लैगिक जीवन में लैगिक विचलन व विपर्यास उत्पन्न हो जाता है जिसे लैंगिक विचलन कहा जाता है।

लैंगिक विकार अथवा विचलन केवल लैंगिक आवश्यकताओं की असन्तुष्टि से ही उत्पन्न नही होती है बल्कि व्यक्ति के जीवन के शैशव काल से संबंधित मनोकामुक कुण्ठाओं से भी उत्पन्न होते है, इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व की निर्बलता, अपरिपक्कता, आवेगशीलता, लैगिंक संबंधों की विफलता भी लैगिक विचलन को जन्म देते है। असन्तुलित हामोन के कारण भी व्यक्ति में लैंगिक विचलन उत्पन्न होता है।

जब लैगिक क्रिया के उपयोग में स्वाभाविक या सामान्य विधियों का प्रयोग न करके कृत्रिम व असामान्य विधियों को प्रयोग में लाया जाता है तो उसे लैगिक विकृति कहते है। लैगिंक विकृतियों का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है जिससे व्यक्तित्व विकास असन्तुलित हो जाता है।

लैंगिक विचलन के कारण:-

1. अधिगम और पुनर्बलन:-

समाजीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत ही प्रत्येक व्यक्ति कामुक व्यवहार का अधिगम करता है जिनका कामुक व्यवहार समाज में प्रचलित व्यवहार से भिन्न होगा वह कामुक व्यवहार निश्चय ही अनुकरण द्वारा सीखे गये व्यवहार से विचलनयुक्त होगा।

2. त्रुटिपूर्ण सूचना:-

आज के समय में भी सेक्स संबंधो के बारे में खुलकर बातचीत करना निषिद्व है जिसके कारण इसके बारे में पर्याप्त सूचना के बजाय त्रुटिपूर्ण सूचना प्राप्त होती है त्रुटि पूर्ण सूचना के कारण भी व्यक्ति का कामुक व्यवहार विचलन हो सकता है।

3. कामुक कुंठा और प्रतिबल:-

अनेक समाजो में विवाह होने से पूर्व यौन संबंधों पर प्रतिबन्ध होता है। प्रतिबन्ध के कारण सेक्स ऊर्जा का उपयोग नही होता है जिसके कारण कुष्ठा उत्पन्न होती है एक अध्ययन में देख गया कि प्रतिबल परिस्थितियों में बलात्कार के होने का सम्भवना अधिक होती है।

4. मानसिक विकार:-

कामुक विचलन व्यवहार करने वाले अधिकांश व्यक्ति विभिन्न मानसिंक रोगों से पीडित होते है। 76 प्रतिशत मानसिक रोगी व्यक्ति व 14 प्रतिशत सामान्य व्यक्तियों में कामुक व्यवहार में विचलन होता है। मनस्ताप, मनोविक्षिप्ता व मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों में कामुक विचलन अत्यधिक होता है|

कामुक विचलन के प्रकार:-

कालमैन ने विभिन्न प्रकार के कामुक व्यवहार के रूप को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

1. वे कामुक विचलन जिनमें कामुक क्रिया व कामुक इच्छा की कमी होती है जैसे नपुंसकता, कामोन्माद (कामशैत्य)

2. वे लैगिंक विकार जिनमें लैगिक विकास अपेक्षाकृत अतिविकसित होता है जैसे पुरूष कामोन्मद, स्त्रीकामोन्माद।

3. वे लैगिंक विकार जो इसलिए असामान्य माने जाते है क्योकि काम-पात्र (विरोधी लिंग) का चयन सामान्य नही होता है। जैसे समलिंगी कामुकता, पशुगमन आदि।

विभिन्न प्रकार के लैंगिक विचलनों के मुख्य रूप निम्नलिखित है।

1. नपुसंकता:-

पुरूषों मे यौन संबंधो की इच्छा में कमी अथवा इसे प्राप्त करने की अयोग्यता को नपुंसकता कहा जाता है जब किसी कारण से किसी व्यक्ति की मैथून क्रिय के प्रति विरूचि उत्पन्न हो जाती है व अपने विपरित लिंग के व्यक्ति के प्रति आंकर्षण नही रहता, या यौन संबंधोके प्रति एक गहरा डर, अपराध भावना व असफलता की भावना घर कर लेती है तब व्यक्ति में नपुसंकता की स्थिति स्पष्ट होती है।

2. कामषैत्य((Frigidity):-

जिस प्रकार से पुरूषों में नपुसंकता होती है उसी प्रकार स्त्रियों में कामशैत्य होता है। नपुसंकता का अपेक्षा कामशैत्य अधिक पाया जाता है। जब एक युवा स्त्री अपने पुरूष साथी के साथ यौन संबंधो मे प्राय बार बार असंतुष्टि तथा अतृप्ति व एक विशेष कष्ट कारक तनाव का अनुभव करने लगती है तब लैगिंक व्यवहार के प्रति अपनी उदासी व शैत्य प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। जिससे उसमें विचलन की प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट होती है।

3. पुरूष कामोन्माद एवं स्त्री कामोन्माद ((Satyriasis & Nymphomania) .

कामोन्माद से तात्पर्य कामुक संबंधो में सक्रियता है। ऐसे स्त्री पुरूष तीव्र कामुक इच्छा का अनुभव करते रहते है। उनका पूरा जीवन इसी इच्छा पर केन्द्रित होता है। ऐसे पुरूष अनेक महिलाओं के साथ यौन संबंध स्थापित करते है ऐसे व्यक्ति में पुरूष एवं भाव की हिनता होती है। जिसके तनाव से वह अनेक स्त्रियों से यौन संबंध स्थापित करते है। इसी प्रकार ऐसी कामुक स्त्री जिसको कभी भी यौन सन्तुष्टि नही हो पाती है और वह नवीन संबंधो के प्रति ललायत रहती है। कामोन्माद उत्पन्न होने के कई कारण होते है।

1. जीवन की समस्याओं से पलायन 2. विभिन्न कुष्ठाओं की क्षति पूर्ति 3. पुरूषत्व व स्त्रीतत्व तथा पर्याप्तता की भावनाओं को ऊचाँ उठाना।

4. हस्तमैथून:-

हस्तमैथून से तात्पर्य कामुख सुख के उदेश्य से ज्ञानेन्द्रियों का आत्म उद्धीपन है। किन्से के अनुसार "62 प्रतिशत स्त्रियाँ तथा 92 प्रतिशत पुरूष अपने जीवन में किसी न किसी समय हस्तमैथून करते है। हस्तमैथून वह लैगिग विचलन है जिसमें स्त्री या पुरूष अपनी कामवासना की तुष्टि करने के लिए अपनेही लिगों को स्पर्श करके सुख का अनुभव करते है।

हमारे समाज में हस्तमैथून को घृणित और खतरनाक क्रिया माना जाता है। कुछ परिस्थिति में हस्तमैथुन अत्यधिक विकृति जनक हो जाता है जिन बालको को प्यार नही मिलता व वह स्वंय को अकेले व अवांछनीय अनुभव करते है उनमें अपनी कुष्ठा की क्षतिपूर्ति के प्रयास के फलस्वरूप हस्तमैथून की आदतपड़ जाती है। हस्तमैथून क्रिया के उत्पन्न होने के कई कारण है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व व तनाव दूर करने के लिए, अत्यधिक चुस्त कपड़े पहनकर उत्तेजना शान्त करने के लिए, अकेलापन दूर करने के लिए एवं लैगिक क्रिया साधानों का अभाव होता है।

5. समलिंगी कामुकता:-

समलिंगी कामुकता यानि समान लिंग के सदस्यों के बीच कामुक संबंध है। किन्से के अनुसार स्त्रियों में पुरूषो की अपेक्षा समंलिगी कामुक संबंध कम पाये जाते है। अर्थात् स्त्रियों में 28 प्रतिशत और पुरूषो में 50 प्रतिशत व्यक्तियों

में समलिंगी कामुकता होती है। समलिंगी कामुकता में विचलन के कई कारण होते हैं जैसे शरीर रचना संबंधी कारक-आनुवाशिकता, हार्मोन असन्तुलन, मनो-सामाजिक कारक विकृतिजनक पारिवारिक प्रारूप, सामाजिक अनुभव दीर्घकालिक विषमलिंगीकामी कुष्ठा आदि।

6. प्रदर्शन वृत्ति ((Exhibitionism) :-

जब एक युवक अथवा युवती की लैंगिक तृप्ति केवल अपने को अर्द्धनग्न या नग्न रूप में प्रर्दशित करने में ही हेाती देखी जाती है। इससे संबंधित व्यक्ति की ऐसी प्रदर्शन वृत्ति एक लैंगिक विकृति ही होती है। इसमें व्यक्ति अपने लैगिक सामने किसी भी सार्वजानिक स्थान पर प्रदर्शित करने लगता है। प्रदर्शन वृति कम आयु के प्रौढ पुरूषों में गीष्म ऋतु में अधिक प्रचलित रहती है। प्रदर्शन वृत्ति कई कारणो से स्पष्ट होती है। विषमलिंगी की ओर अग्रसर होना, पुरूषत्व के प्रति शंका एवं भय मनो विकृतियाँ आदि।

7. दर्शन रति ((Voyeurism):-

इसके अन्तर्गत व्यक्ति विरोधी लिंग के व्यक्त्यिों के अद्वनग्न अंगो को देखकर ही विशेष लैंगिक तृप्ति की अनुभूति करते है इसके अन्तर्गत पुरूष ऐसी स्त्रियों पर ध्यान एकाग्र करते है जो कपड़े उतार रही हो व ऐसे दम्पत्ति को देखते है जो कामुक संबंधो में व्यस्त हो। ऐसे दृश्य को देखते समय यह प्रायः हस्तमैथुन क्रिया करते है।

8. वस्तु कामुकता ((Fetishism):-

इसमें स्त्री व पुरूष अपने विषम लिंग के व्यक्ति के निर्जीव वस्तुओं का प्रयोग करते है इनमें पुरूष द्वारा स्त्रियों के अर्न्तवस्त जिनमें जाँघियाँ, आगिया, चोली आदि का उपयोग करते है। इसी प्रकार स्त्रिया भी पुरूष की वस्तुओं का उपयोग कर व उन्हे स्पर्श करके लैगिक सुख की अनुभूति प्राप्त करती है। कभी कभी व्यक्ति द्वारा वस्तु कामुक व्यवहार में वस्तुओं के साथ हस्तमैथून किया जाता है।

9. शव कामुकता ((Necrophilia):-

इसके अर्न्तगत पुरूष संबंध स्थापित करने से पहले स्त्री की हत्या करता है और फिर उसके साथ आसानी से यौन संबंध स्थापित करता है। इसका संबंध किसी गम्भीर मानसिक रोग से होता है।

10. परपीडन कामुकता ((Sadism):-

परमीडन कामुकता की उत्पत्ति मार्किस डिसेड (1740-1814) के नाम से हुई जो अपनी कामुकता के शिकारों पर क्रूरता और निर्दयता का व्यवहार करके अपनी कामुक इच्छाओं की तृष्टि करता है। इस प्रकार की विकृति में अपने प्रेमपात्र की पीडा के मुख्य उदाहरण पुरूष की शिषन को काटना या उसे चोट पहुचाना व स्त्रियों के अन्तिरिक अंगो पर आधात पहुचाना होता है जिससे स्त्री व पुरूष को लैगिक सुख की प्राप्ति होती है।

11. स्वपीडन कामुकता ((Masochism):-

ऐसी लैगिक विचलन की स्थिति के अन्तर्गत एक स्त्री अपनी कामतृप्ति सम्भोग प्रक्रम में पुरूष के द्वारा घोर पीड़ा प्राप्त करती है पीडा संबंधो से उसे सन्तुष्टि प्राप्त नही होती है।

12. बालरति ((Pedophilia):-

इससे एक कामुक व्यक्ति अपनी कामतुष्टि के लिए अबोध बालक व बालिकाओं को ही बहला फुसलाकर अपना शिकार बनाता हैं।बालरति को समाज एक गम्भीर अपराध मानता है।

13. पशुगमन ((Bestiality):-

कुछ व्यक्ति अपने काम संबंधी तनाव की सन्तुष्टि के लिए पशुओं को काम साथी बना लेते है।

14. अगम्यगमन अथवा अजाचार ((Incest):-

जब कभी एक परिवार के अति निकट के सदस्यों में काम संबंध देखने में आता है तब ऐसे संबंध को व्यक्तिचार व अजाचार कहा जाता है। सार्वधिक प्रचलित व्याभिचार भाइयों और बाहनों के बीच होता है। ऐसा लैगिक विचलन सामजिक मार्यादा तथा व्यक्तिगत शिष्ठता की दृष्टि से, निषिद्व तथा वर्जित ही होता है।

लैंगिक विचलन के उपचार:-

कामशैव्य या नपुसंकता, वस्तु कामुकता और समलिंगी कामुकता का उपचार व्यवहार चिकित्सा द्वारा किया जाता है वस्तु कामुकता का उपचार काम वस्तु के प्रति अनुकूलित विरूचि स्थापित करके किया जा सकता है।

कामुक विचलनों का उपचार अधिकाश अन्य आसमान्य व्यवहारो के उपचार से मूलतः भिन्न नही होता है। दोनो मे ऐसी प्रविधियां अपनायी जाती जिनसे रोगी अपने अभिप्रेरणो में अन्तदृर्ष्टि प्राप्त कर सके तथा अपनी मूल अभिवृत्तियों को परिवार्तित कर सके। अधिक स्वीकार्य व्यवहार के स्वरूप को विकसिकत करे। अधिक गंभीर कामुक अपराधो जैसे परपीडन और बाल रति के रोगियों को कारावास मे भेजना आवश्यक होता है। कम गम्भीर अपराधों के लिए अस्पताल उपर्युक्त है।

सामूहिक चिकित्सा समूह सापेक्ष चिकित्सा तथा , मनोचिकित्सा द्वारा लैंगिंक विचलनों कें उपचार मे लाभकारी सिद्व हुई है।

5. मद्यव्यसिनता ((Alcoholism)

मद्यपान के कारण नैतिक दुर्बलता और इच्छा शक्ति की कमी समझा जाता था परन्तु आधुनिक मनौवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे मनोविकृत्यात्मक समस्याएँ माना जाता है।

व्यक्ति अपने आन्तरिक ओर ब्राह्य असहनीय प्रतिवलों के प्रति मद्यपान का सेवन करके प्रतिक्रिया करता है। मद्यपान का सेवन कुछ समाजो तथा विशिष्ट वर्ग के व्यक्त्यिों के लिए एक साधारण सी बात है। इसका उपयोग व्यक्ति दुश्चिन्ता

व कुष्ठा के कष्ट कारक तनावों से मुक्ति पाने के लिए करता है। जब व्यक्ति सामान्य रूप से जब तक मद्यपान करते रहते है तब तक उनकी शारीरिक व मानसिंक स्थिति भी सामान्य बनी रहती है। परन्तु जैसे ही उन्होने किसी कारण मद्यपान बन्द कर दिया, तब उनमें मन के उचाट रहने, सिरदर्द, चिड़चिड़पन व दामित दुश्चिन्ता तथा कुष्ठा के तनाव के उभरने के कारण मन स्थिति एक दम आकुल भारी व अवसादी रहने लगती है।

किसी मानसिक रोग का एक मात्र कारण मद्यसेवन ही नही होता परन्तु कुछ ऐसे विशेष लक्षण होते है जो मद्यपान के कारण ही उत्पन्न होते है। इन्हे ही मद्यव्यसनिक मनोविकृति कहते है। जब रक्त में ऐल्कोहल की मात्रा 0.1 प्रतिशत हो जाती है तो व्यक्ति को नशा हो जाता है व पेशीय समन्वय, उच्चारण और दृष्टि में ह्रास उत्पन्न होने लगता है। जब ऐल्कोहल की मात्रा 0.5 प्रतिशत हो जाती है तो समस्त तान्त्रिकीय सन्तुलन बिगड जाता है व्यक्ति बेहोश हो जाता है। जब यह मात्रा 0.55 प्रतिशत हो जाये तो घातक सिद्व हो सकती है।

कौलमैन (1976) के अनुसार मद्यपान 50 प्रतिशत हत्याओं, 40 प्रतिशत हमला, 35 प्रतिशत बलात्कार, और 30 प्रतिशत आत्महत्या के कारण होती है। लेविट के अनुसार मदिरापान करने वाले व्यक्ति की आयु सामान्य अवस्था की अपेक्षा 12 वर्ष कम हो जाती है।

मद्यपान के प्रकार:-

1. मनोविकारी मादकता ((Pathological Intoxication):-

रोगी में मनोविकारी मादकता कुछ मिनट से लेकर कभी कभी घण्टों तक बनी रहती है। यह एक तीव्र प्रतिक्रिया है। यह उन व्यक्तियों में घटित होती है जिनमें एल्कोहल के प्रति सहनशीलता बहुत कम होती है। उदा0 के लिए मिर्गी से पीडित व्यक्ति व वे व्यक्ति जिनका व्यक्तित्व अस्थिर रहता है। थकान और संवेगात्मक तनाव आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ है जिनमें एक सामान्य व्यक्ति की ऐल्कोहल के प्रति सहनशीलता कम हो जाती है। ऐल्कोहल लेने से रोगी में विभ्रम उत्पन्न होने लगते है और वह दिशा भ्रमित होने लगता है।

2. सकम्प प्रलाप (नशे से ज्ञान भ्रान्ति) ((Delirium Tremens):-

यह स्थिति उन व्यक्यिों में उत्पन्न होती है जो लबे समय तक अधिक मद्यपान करते रहे हो और वह किसी कारण एक दम समाप्त कर देते है। इस विकार का सर्वप्रथम वर्णन टॉमस सूटन ने (1813) में किया इस स्थिति में व्यक्ति को नीद नही आती। उसमें व्याकुलता एवं भूख की कमी के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। तेज बुखार तथा कब्ज की शिकायत, नाडी गति मे मन्दता आ जाती है। रोगी को अनेक प्रकार के भ्रम व भय सताते रहते है। कुछ स्थितियों में ऐसे व्यक्ति के होंठ, जीभ एवं हाथों मे कम्पन्न, हृदय की तीव्र गति, संसकी दुर्गन्ध प्रायः देखने में आता है।

3. तीव्र विभ्रमशीलता:-

इसका मुख्य लक्षण श्रवण विभ्रम है इसमें आरम्भ में रोगी को आवजें सुनाई देती है। जिनका संबंध उनके व्यक्तिगत जीवन से होता है। कभी कभी व्यक्ति इतना भयभीत हो जाता है कि आत्मरक्षा के लिए हथियार खरीदता है व पुलिस से सहायता मागता है। इस प्रकार के रोगी को मानसिक अस्पताल मे भरती करना आवश्यक है। इस स्थिति में

मद्यव्यसनी अपने गहरें एवं आन्तरिक अपराधों व पापो के लिए आत्मपश्ताचाप की गहरी भावना से पीड़ित व प्रताड़ित होते देखा जाता है।

4. कोर्साकोफ मनस्ताप:-

इस रोग का वर्णन 1887 में रूसी मनो चिकित्सक कोर्साकोफ ने किया। इसका प्रमुख लक्षण स्मृति दोष है जिसमें व्यक्ति तात्कालिक घटनाओं को भूल जाता है स्मृति दोष के कारण घटनाओं के बीच साहचर्य स्थापित नही कर पाते। यह मनस्ताप प्रायः बूढे मद्यव्यसनियों में अधिक उत्पन्न होता है जो कई वर्षो से मद्यपान कर रहे होते है। इस मनस्ताप के उत्पन्न होने के कारण विटामिन बी की कमी तथा अन्य आहार है इसका संबन्ध आंगिक विकृति से नही है। रोगी के पूर्ण विश्राम की व्यवस्था करनी चाहिए। मद्यपान का पूर्ण निषेध तथा विटामिन बी से युक्त पौष्टिक भोजन देना अति आवश्यक होता है।

5. दीर्घकालिक मनोविकृति (Chronic Reactions):-

जो व्यक्ति अनेक वर्षो से मद्यपान करते है उन्हे धीरे धीरे शराब पीने की लत पड जाती है और वह इस विकृति के शिकार हो जाते है जो लोग कई वर्षो से शराब पीते चले आ रहे है उनका शरीर व मन दोनो का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों में अनेक प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते है जैसे शरीर का कापंना, चेहरा चौडा हो जाना, शरीर में दर्द आदि। बौद्विक और नैतिक योग्यताएं धीरे-धीरे कम होने लगती है। स्मृति निर्णय और एकाग्रता की कमी हो जाती हैं।

मद्यपान के कारण:-

मद्यपान के अनेक कारण है जैविक कारण, मनौवैज्ञानिक कारण, सामाजिक संस्कृति कारण।

1 जैविक कारण:-

जब व्यक्ति लम्बे समय तक मद्यपान करता रहता है तब उसका शरीर पूर्ण रूप से मदिरा पर आश्रित हो जाता है। अत्यधिक समय से मद्यपान करते रहने के बाद जब तक व्यक्ति मद्यपान करना बन्द करता है तो उसमें प्रत्यागमन सवधी लक्षण उत्पन्न हो जाते है। जैसे दुर्बलता, पसीना आना, उल्टी होना, विभ्रम, ज्वर आदि। प्रत्यागमन के इन लक्षणों का कारण यह होता है कि रोगी कोशिया सम्बन्धी चयापचय में एल्कोहल की उपस्थिति का अभ्यस्त हो जाता है। इसे शरीरक्रियात्मक आभ्रितत ((Physiological Deperiderice) का आरम्भ कहा जाताहै।

2. मनोवैज्ञानिक कारण:-

मद्यपान पर व्यक्ति केवल दैहिक रूप से ही आश्रित नही होता है बल्कि यह मद्यपान पर मनौवैज्ञानिक रूप से भी आश्रित होता है मद्यपान का संबंध समायोजन से है अत्यधिक मद्यपान से सम्पर्क से जीवन का समयोजन क्षतिग्रस्त हो जाता है। मद्यपान करने वाले व्यक्ति संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व होते है ये व्यक्ति चाहते है कि लोग उनके

व्यक्तिव की प्रशंसा करे। व्यक्ति के अत्यधिक मद्यपान करने का एक महत्वपूर्ण कारण उसका दुर्बल व्यक्तित्व होता है मद्यपान करने की वजह से व्यक्ति अपना कार्य स्वंय नही करना चाहता है। और दूसरो पर आश्रित रहता है। और जब दूसरे व्यक्ति उसकी किसी प्रकार की कोई सहायता नही करते हैं तब वह मद्यपान का सेवन करने लगता है।

मद्यपान करने वाले व्यक्तियों की व्यक्तित्व विशेषताएँ सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा भिन्न होती है। मद्यपान करने वाले व्यक्ति में प्रतिबल के प्रति सहनशीलता बहुत कम होती है। ऐसे व्यक्ति तनाव व प्रतिबल को सहन नही कर पाते है।

एक अध्ययन के अनुसार मद्यपान करने वाले व्यक्ति की चिन्ता मद्यपान के द्वारा कम होती है। जब एक व्यक्ति का जीवन कठोर व प्रतिबलक स्थितियों से निराश व हताश हो जाता है तब उसमें जीवित रहने व जीवन के कष्टों का भार उठाने की इच्छा नही रह जाती है इसलिए व्यक्ति मद्यपान की और अग्रसित हो जाता है। अत्यधिक मद्यपान से चेतन रूप से अपनी मृत्यु को ही निमन्त्रण देना है इस आधार पर कह सकते है। । (A man is sick not because he drinks but he drinks because he is sick)एक व्यक्ति इस कारण रोगी नही है कि अत्यधिक मदिरा पीता है बल्कि इस कारण ही मदिरा पीता है क्योकि वह रोगी है।

4. सामाजिक सांस्कृतिक कारक:-

सामाजिक सांस्कृतिक कारक भी मद्यपान को बढावा देते है यदि किसी समाज में मद्यपान को बुरा नही समझा जाता है वहा व्यक्ति अत्यधिक मद्यपान के लिए अग्रसर हो जाते है। जब व्यक्ति अपने परिवार में बढे बुढो की मध्यपान का सेवन करते हुए देखते है तो वह इसका सेवन भी करने लगते है।

जब व्यक्ति समाज में रहकर किसी कुसंगति में फस जाता है। तो भी मद्यपान करने लगता है। क्याकि जैसी संगत होती है व्यक्ति वैसा ही व्यवहार करता है।

जब व्यक्ति क पारिवारिक वातारण दोषपूर्ण होता है और वह इससे समायोजन नही कर पात है व उसके पिता व भाई किसी विकृति से ग्रसित होते है तब वह मद्यपान के सेवन को अपनाता है। बेल्स (Bales 1946) के अनुसार किसी समाज में मद्यव्यसनिता की लोकप्रियता को तीन संस्कृति कारण जिम्मेदार होते है।

1. संस्कृति द्वारा उत्पन्न किये गये आन्तरिक तनाव और प्रतिबल की मात्रा।
2. संस्कृति द्वारा पोषित मद्यपान के प्रति अभिवृत्तियां।
3. संस्कृति द्वारा असन्तुष्टि और दुश्चिन्ता का सामना करने के अन्य साधनों की उपलब्धता।

संस्कृति अभिवृत्तियों का मद्यपान पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए इस्लामी सभ्यता मे मद्यपान को बुरा माना जाता है। इसी तरह से यहूदियों में इसका उपयोग केवल धार्मिक कार्यक्रमों में किया जाता है। दोनो ही संस्कृतियों में मद्यपान की मात्रा कम पाया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक अभिवृत्तियाँ मद्यपान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

उपचार:-

मद्यपान के रोगी के उपचार के लिए आवश्यक है कि उसे मदिरा से पूर्णरूप् से दूर रखा जाए। मद्यपान को दूर करने के लिए औषधियों द्वारा उपचार करना भी आवश्यक होता है। इस औषधियों के अन्तर्गत क्लोरडियाजम आक्साइड, क्लोर प्रोमेजीन जैसी औषधियों से मद्यपान के उपचार मे सहायता मिलती है। इन औषधियों की सहायता से व्यक्ति के तनावों और दुश्चिन्ता को कम किया जाता है। रोगी अपने आहारों को आसानी से पचा लेता है और उसे आराम की नींद आने लगती है।

फ्रैक्स (1966) का यह कहना है कि यदि रोगी के मदिरा में कुछ ऐसी औषधि सम्मिलित कर दिया जाये जिससे उसको इसके पीने से पहले उसमें से बुरी गन्ध आने लगे अथवा उसे पलटी आदि की शिकायत होने लगे इससे रोगी को मद्यपान छोड़ने मे सहायता मिलती है इसके संबंध में ऐमेटाइन हाइड्रोक्लोरइड व डिसूल फैरीन औषधि प्रमुख है। मद्यपान के उपचार के लिए सामूहिक उपचार तथा समाज सापेक्ष चिकित्सा सहायता मिलती है। सामूहिक चिकित्सा और व्यक्तिगत चिकित्सा के द्वारा रोगी में अपने व्यवहार के प्रति अन्तदृष्टि उत्पन्न की जा सकती है। व्यवहार उपचार पद्वति के द्वारा भी 50 से 80 प्रतिशत रोगियों की स्थिति में लाभ होते देखा गया है।
उपचार की नयी विधियों के साथ साथ औषध मानसिक और सामाजिक प्रविधियों और मद्यव्यसनिक अनामिक जैसी संस्थाओं द्वारा 60 से 80 प्रतिशत मद्यव्यसनी पूर्णरूप से सदैव के लिए मद्यपान छोड़ देते है।

9.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्तित्व विकार कितने प्रकार के होते है ?
2. समाज विरोधी व्यक्ति से क्या तात्पर्य है ?समाज विरोधी व्यक्तित्व के दो लक्षणों को स्पष्ट कीजिए ?
3. समाज विरोधी व्यक्तित्व के उपचार में कौन सी विधियाँ लाभप्रद है ?
4. बाल अपराधियों की सही आयु सीमा क्या है ?
5. बाल अपराधियों के उपचार की कौन सी विधि अपनाई गई ?
6. लैगिक विचलन के कारण कौन कौन से है ?
7. लैगिंक विचलन के पाँच प्रकारो का नाम उल्लेखित कीजिए ?

9.6 सारांश

किसी भी व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ समायोजन के लिए आवश्यक है कि उस व्यक्ति का व्यवहार वातावरण में उपस्थित सभी व्यक्तियों के साथ अच्छा होना चाहिए, परन्तु यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व विघटित होता है तो उसका व्यवहार अच्छा नही होता है। व्यक्तित्व के विघटित होने से उसके व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगते है। इन विकारों के उत्पन्न होने से व्यक्ति का व्यवहार असमायोजित होने लगती है जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिंक स्वास्थ्य पर समाज विरोधी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव पड़ता है बहुत अधिक महत्व दिया गया है समाज विरोधी प्रतिक्रियाओं के अर्न्तगत व्यक्ति समाज के विरूद्व कार्य करने लगते है जिससे समाज को हानि पहुचँती है। इससे व्यक्ति कभी कभी अपराध करना भी आरम्भ कर देता है मदिरापान का भी सेवन करने लग जाता है इस प्रकार के कार्यो को करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेको प्रकार के विकार उत्पन्न होने लगते है। व्यक्तित्व के प्रमुख पाँच

प्रकार होते है। समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाए, बालापचार, प्रौढ अपराध एवं नव अपराधी, कामुक विचलन, मद्य व्यसनिता आदि।

9.7 शब्दावली

1. लैंगिक विपर्यास ((Sexual Perversion)):-

जब काम अन्तर्नोद की सन्तुष्टि सामान्यतः विरोधी लिंग के व्यक्ति के साथ मैथुन द्वारा न होकर किसी अन्य व्यवहार व साधन से होते देखा जाता है तब व्यक्ति के ऐसे लैगिक व्यवहार को लैगिक विचलन अथवा विपर्यास कहा जाताहै।

2. कामशैल्य (Frigidity):-

जब एक युवास्त्री अपने पुरूष साथी के साथ काम सम्बन्धी में प्रायः बारम्बार असन्तुष्टि तथा अतृप्ति अथवा कष्ट कारक तनाव का ही अनुभव करने लगे तब ऐसे व्यवहार को कामशैल्य कहा जाताहैं।

3. कुसमायोजित व्यवहार:-

- किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया वह व्यवहार जो अनैतिक हो, समाज के विरूद्व हो व उसमें समायोजन का अभाव हो कुसमायोजित व्यवहार कहलाता है ।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

a) व्यक्तित्व के विकार पांच प्रकार के होते है।

b) समाज विरोधी व्यक्तित्व के व्यक्ति द्वारा समाज के नियमों का उल्लंधन किया जाता वह समाज को स्वीकार्य नही होता है। समाजविरोधी लक्षण निम्न है।

1. सुखवाद एवं अवास्तविक लक्ष्य।
2. दोषपूर्ण सामाजिक संबंध।

c) समाज विरोधी व्यक्ति के उपचार में वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, औषध चिकित्सा का उपयोग किया जाता है।

d) बाल अपराधियों की आयु सीमा 17 वर्ष तक है।

e) बाल अपराधियो के उपचार में मनोचिकित्सा व समाज सापेक्ष चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्व होती है।

f) लैंगिक विचलन के चार प्रमुख कारण है।

1. अधिगम और पुर्नवलन।
2. त्रुटिपूर्ण सूचना।

3. कमुक कष्ठा और प्रतिबल।
4. मानसिक विकार।

g) लैंगिक विचलन के पांच प्रकार निम्नलिखित है।

1. नपुसंकता ।
2. हस्तमैथून।
3. समलिंगी कामुकता।
4. परपीडन कामुकता।
5. स्वपीडन कामुकता

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

a. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

b. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

c. Kapil, H.K.(2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

d. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

e. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

a. व्यक्तित्व विकार के स्वरूप का वर्णन कीजिए तथा उसके विभिन्न प्रकारो की विवेचना कीजिए |

b. समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारणो व लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।

c. बाल अपराध से क्या तात्पर्य है ? बाल अपराध के कारणो पर प्रकाश डालिए।

d. लैंगिक विचलन क्या है इनके कारणो को स्पष्ट कीजिए |

e. लैंगिक विचलन के प्रकारो की व्याख्या कीजिए व उपचार में कौन कौन सी विधि प्रयुक्त की जाती है सविस्तार उल्लेख कीजिए|